११ राजनीतिक कहानियाँ

और

समर-यात्रा

●

प्रेमचन्द

•

११ राजनीतिक कहानियाँ

और

समर-यात्रा

•

प्रेमचन्द

•

•

बनारस,

सरस्वती प्रेस

•

अनुक्रम

११ राजनीतिक कहानियाँ और

समर-यात्रा

जेल

—

मृदुला मैजिस्ट्रेट के इजलास से जनाने जेल में वापस आई, तो उसका मुख प्रसन्न था। बरी हो जाने की गुलाबी आशा उसके कपोलों पर चमक रही थी। उसे देखते ही राजनैतिक क़ैदियों के एक गिरोह ने घेर लिया और पूछने लगीं, कितने दिन की हुई?

मृदुला ने विजय गर्व से कहा—मैंने तो साफ़-साफ़ कह दिया, मैंने धरना नहीं दिया। यों आप ज़बर्दस्त हैं, जो फैसला चाहें, करें। न मैंने किसी को रोका, न पकड़ा, न धक्का दिया, न किसी से आरज़ू-मिन्नत ही की। कोई गाहक मेरे सामने आया ही नहीं। हाँ, मैं दूकान पर खड़ी ज़रूर थी। वहाँ कई वालंटियर गिरफ़्तार हो गये थे। जनता जमा हो गई थी। मैं भी खड़ी हो गई। बस, थानेदार ने आकर मुझे पकड़ लिया।

क्षमादेवी कुछ क़ानून जानती थीं। बोलीं—मैजिस्ट्रेट पुलीस के

बयान पर फैसला करेगा। मैं ऐसे कितने ही मुक़दमे देख चुकी।

मृदुला ने प्रतिवाद किया—पुलीसवालों को मैंने ऐसा रगड़ा, कि वह भी याद करेंगे। मैं मुक़दमे की कार्रवाई में भाग न लेना चाहती थी; लेकिन जब मैंने उनके गवाहों को सरासर झूठ बोलते देखा, तो मुझसे ज़ब्त न हो सका। मैंने उनसे जिरह करनी शुरू की। मैंने भी इतने दिनों घास नहीं खोदी है। थोड़ा-सा क़ानून जानती हूँ। पुलीस ने समझा होगा, यह कुछ बोलेगी तो है नहीं, हम जो बयान चाहेंगे देंगे। जब मैंने जिरह शुरू की, तो सब बग़लें झाँकने लगे। मैंने तीनों गवाहों को झूठा साबित कर दिया। उस समय जाने कैसे मुझे चोट सूझती गई। मैजिस्ट्रेट ने थानेदार को दो-तीन बार फटकार भी बताई। वह मेरे प्रश्नों का ऊल-जलूल जवाब देता था, तो मैजिस्ट्रेट बोल उठता था—वह जो कुछ पूछती हैं, उसका जवाब दो, फजूल की बातें क्यों करते हो। तब मियाँजी का मुँह ज़रा-सा निकल आता था। मैंने सबों का मुँह बन्द कर दिया। अभी साहब ने फैसला तो नहीं सुनाया; लेकिन मुझे विश्वास है, बरी हो जाऊँगी। मैं जेल से नहीं डरती; लेकिन बेवकूफ़ भी नहीं बनना चाहती। वहाँ हमारे मंत्रीजी भी थे और बहुत-सी बहनें थीं। सब यही कहती थीं, तुम छूट जाओगी।

महिलाएँ उसे द्वेषभरी आँखों से देखती हुई चली गईं। उनमें किसी की मीयाद साल भर की थी, किसी की छः मास की। उन्होंने अदालत के सामने ज़बान ही न खोली थी। उनकी नीति में यह अधर्म से कम न था। मृदुला पुलीस से जिरह करके उनकी नज़रों में गिर गई थी। सज़ा हो जाने पर उसका व्यवहार क्षमा हो सकता था; लेकिन बरी हो जाने में तो उसका कुछ प्रायश्चित्त ही न था।

दूर जाकर एक देवी ने कहा—इस तरह तो हम लोग भी छूट

जाते। हमें तो यह दिखाना है, कि नौकरशाही से हमें न्याय की कोई आशा ही नहीं।

दूसरी महिला बोलीं—यह तो क्षमा माँग लेने के बराबर है। गई तो थीं धरना देने, नहीं दूकान पर जाने का काम ही क्या था। वालंटियर गिरफ़्तार हुए थे, आपकी बला से। आप वहाँ क्यों गईं; मगर अब कहती हैं, मैं धरना देने गई ही नहीं। यह तो क्षमा माँगना हुआ, साफ़!

तीसरी देवी मुँह बनाकर बोलीं—जेल में रहने के लिए बड़ा कलेजा चाहिये। उस वक्त तो वाह-वाह लूटने के लिए आ गईं, अब रोना आ रहा है। ऐसी स्त्रियों को तो राष्ट्रीय कामों के नगीच ही न आना चाहिये। आन्दोलन को बदनाम करने से क्या फ़ायदा।

केवल क्षमा देवी अब तक मृदुला के पास चिंता में डूबी खड़ी थीं। उन्होंने एक उद्दंड व्याख्यान देने के अपराध में साल भर की सज़ा पाई थी। दूसरे जिले से एक महीना हुआ यहाँ आई थीं। अभी मीयाद पूरी होने में आठ महीने बाक़ी थे। यहाँ की पन्द्रह कैदियों में किसी से उसका दिल न मिलता था। ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए उनका आपस में झगड़ना, बनाव-सिंगार की चीज़ों के लिए लेडी-वार्डरों की खुशामदें करना, घरवालों से मिलने के लिए व्यग्रता दिखलाना उसे पसन्द न था। वही कुत्सा और कनफुसकियाँ जेल के भीतर भी थीं। वह आत्माभिमान, जो उसके विचार में एक पोलिटिकल क़ैदी में होना चाहिये, किसी में भी न था। क्षमा उन सबों से दूर रहती थी। उसके जाति-प्रेम का वारापार न था। इस रंग में पगी हुई थी; पर अन्य देवियाँ उसे घमंडिन समझती थीं और उपेक्षा का जवाब उपेक्षा से देती थीं। मृदुला को हिरासत में आये आठ दिन हुए थे। इतने ही दिनों

में क्षमा को उससे विशेष स्नेह हो गया था। मृदुला में वह संकीर्णता और ईर्ष्या न थी, न निन्दा करने की आदत, न शृंगार की धुन, न भद्दी दिल्लगी का शौक़। उसके हृदय में करुणा थी, सेवा का भाव था, देश का अनुराग था। क्षमा ने सोचा था, इसके साथ छः महीने आनन्द से कट जायँगे; लेकिन दुर्भाग्य यहाँ भी उसके पीछे पड़ा हुआ था। कल मृदुला यहाँ से चली जायगी। वह फिर अकेली हो जायगी। यहाँ ऐसा कौन है, जिसके साथ घड़ी भर बैठकर अपना दुःख-दर्द सुनायेगी, देश-चर्चा करेगी; यहाँ तो सभी के मिज़ाज आसमान पर हैं।

मृदुला ने पूछा—तुम्हें तो अभी आठ महीने बाक़ी हैं, बहन!

क्षमा ने हसरत के साथ कहा—किसी न किसी तरह कट ही जायँगे बहन; पर तुम्हारी याद बराबर सताती रहेगी। इसी एक सप्ताह के अन्दर तुमने मुझ पर न-जाने क्या जादू कर दिया। जब से तुम आई हो, मुझे जेल, जेल न मालूम होता था। कभी-कभी मिलती रहना।

मृदुला ने देखा, क्षमा की आँखें डबडबाई हुई थीं। ढारस देती हुई बोली—ज़रूर मिलूँगी दीदी। मुझसे तो खुद न रहा जायगा। भान को भी लाऊँगी। कहूँगी—चल तेरी मौसी आई है, तुझे बुला रही है। दौड़ा हुआ आयेगा। अब तुमसे आज कहती हूँ बहन, मुझे यहाँ किसी की याद आती थी, तो भान की। बेचारा रोया करता होगा। मुझे देखकर रूठ जायगा। तुम कहाँ चली गई? मुझे छोड़कर क्यों चली गई? जाओ मैं तुमसे नहीं बोलता। तुम मेरे घर से निकल जाओ। बड़ा शैतान है बहन। छन-भर निचला नहीं बैठता, सवेरे उठते ही गाता है—'झन्ना ऊँता लये अमाला', 'छोलाज का मंदिल देल में है।' जब एक झंडी कंधे पर रखकर कहता है—ताली-छलाव पीना

हलाम है, तो देखते ही बनता है। बाप को तो कहता है—तुम गुलाम हो। वह एक अँग्रेज़ी कम्पनी में हैं। बार-बार इस्तीफ़ा देने का विचार करके रह जाते हैं; लेकिन गुज़र-बसर के लिए कोई उद्यम करना ही पड़ेगा। कैसे छोड़ें। वह तो छोड़ बैठे होते। तुमसे सच कहती हूँ, गुलामी से उन्हें घृणा है; लेकिन मैं ही समझाती रहती हूँ। बेचारे कैसे दफ़्तर जाते होंगे, कैसे भान को सँभालते होंगे। सासजी के पास तो रहता ही नहीं। वह बेचारी बूढ़ी, उसके साथ कहाँ-कहाँ दौड़ें! चाहती हैं, कि मेरी गोद में दबककर बैठा रहे। और भान को गोद से चिढ़ है। अम्माँ मुझ पर बहुत बिगड़ेंगी, बस यही डर लग रहा है। मुझे देखने एक बार भी नहीं आईं। कल अदालत में बाबूजी मुझसे कहते थे, तुमसे बहुत खफ़ा हैं। तीन दिन तक तो दाना-पानी छोड़े रहीं। इस छोकरी ने कुल-मरजाद डुबा दी, ख़ानदान में दाग लगा दिया, कलमुँही, कुलच्छनी, न जाने क्या-क्या बकती रहीं। मैं तो उनकी बातों को बुरा नहीं मानती। पुराने ज़माने की हैं। उन्हें कोई चाहे कि आकर हम लोगों में मिल जायँ, तो यह उसका अन्याय है। चलकर मनाना पड़ेगा। बड़ी मिन्नतों से मानेंगी। कल ही कथा होगी, देख लेना। ब्राह्मण खायेंगे। बिरादरी जमा होगी। जेल का प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा। तुम हमारे घर दो-चार दिन रहकर तब जाना बहन। मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगी।

क्षमा आनन्द के इन प्रसंगों से वंचित है। वह विधवा है, अकेली है। जलियानवाले बाग़ में उसका सर्वस्व लुट चुका है, पति और पुत्र दोनो ही की आहुति दी जा चुकी है। अब कोई ऐसा नहीं, जिसे वह अपना कह सके। अभी उसका हृदय इतना विशाल नहीं हुआ है, कि प्राणी-मात्र को अपना समझ सके। इन दस बरसों से उसका व्यथित

हृदय जाति-सेवा में धैर्य और शान्ति खोज रहा है। जिन कारणों ने उसके बसे हुए घर को उजाड़ दिया, उसकी गोद सूनी कर दी, उन कारणों का अंत करने—उनको मिटाने—में वह जी-जान से लगी हुई थी। बड़े से बड़े बलिदान तो वह पहले ही कर चुकी थी। अब अपने हृदय के सिवा उसके पास होम करने को और क्या रह गया था? औरों के लिए जाति-सेवा सभ्यता का एक संस्कार हो, या यशोपार्जन का एक साधन; क्षमा के लिए तो यह तपस्या थी, और वह नारीत्व की सारी शक्ति और श्रद्धा की साधना में लगी हुई थी: लेकिन आकाश में उड़ने-वाले पक्षी को भी तो अपने बसेरे की याद आती ही है। क्षमा के लिए वह आश्रय कहाँ था? यही वह अवसर थे, जब क्षमा भी आत्म-समवेदना के लिए आकुल हो जाती थी। यहाँ मृदुला को पाकर वह अपने को धन्य मान रही थी; पर यह छाँह भी इतनी जल्द हट गई!

क्षमा ने व्यथित कंठ से कहा—यहाँ से जाकर भूल जाओगी मृदुला। तुम्हारे लिए तो यह रेलगाड़ी का परिचय और मेरे लिए तुम्हारे वादे उसी परिचय के वादे हैं। कभी कहीं भेंट हो जायगी, तो या तो पहचानोगी ही नहीं, या ज़रा मुसकिराकर नमस्ते करती हुई अपनी राह चली जाओगी। यही दुनिया का दस्तूर है। अपने रोने से छुट्टी ही नहीं मिलती, दूसरों के लिए कोई क्योंकर रोये। तुम्हारे लिए तो मैं कुछ नहीं थी, मेरे लिए तुम बहुत कुछ थीं। मगर अपने प्रिय-जनों में बैठकर कभी-कभी इस अभागिनी को ज़रूर याद कर लिया करना। भिखारी के लिए चुटकी भर आटा ही बहुत है।

दूसरे दिन मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुना दिया। मृदुला बरी हो गई। संध्या समय वह सब बहनों से गले मिलकर, रोकर, रुलाकर, चली गई, मानो मैके से बिदा हुई हो।

(२)

तीन महीने बीत गये ; पर मृदुला एक बार भी न आई । और क़ैदियों से मिलनेवाले आते रहते थे, किसी-किसी के घर से खाने-पीने की चीज़ें और सौग़ातें आ जाती थीं ; लेकिन क्षमा का पूछनेवाला कौन बैठा था ? हर महीने के अंतिम रविवार को वह प्रातःकाल से ही मृदुला की बाट जोहने लगती । जब मुलाक़ात का समय निकल जाता, तो ज़रा देर रोकर मन को समझा लेती ; ज़माने का यही दस्तूर है !

एक दिन शाम को क्षमा संध्या करके उठी थी, कि देखा, मृदुला सामने चली आ रही है । न वह रूप-रंग है, न वह कांति । दौड़कर उसके गले से लिपट गई और रोती हुई बोली—यह तेरी क्या दशा है मृदुला ! सूरत ही बदल गई । क्या बीमार है क्या ?

मृदुला की आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी । बोली—बीमार तो नहीं हूँ बहन । विपत्ति से बिंधी हुई हूँ । तुम मुझे ख़ूब कोस रही होगी । उन सारी निठुराइयों का प्रायश्चित्त करने आई हूँ । और सब चिंताओं से मुक्त होकर आई हूँ ।

क्षमा काँप उठी । अंतस्तल की गहराइयों से एक लहर-सी उठती हुई जान पड़ी, जिसमें उसका अपना अतीत जीवन टूटी हुई नौकाओं की भाँति उतराता हुआ दिखाई दिया । रुँधे हुए कण्ठ से बोली—कुशल तो है बहन, इतनी जल्द तुम यहाँ फिर क्यों आ गईं ? अभी तो तीन महीने भी नहीं हुए ।

मृदुला मुसकिराई ; पर उसकी मुसकिराहट में रुदन छिपा हुआ था । फिर बोली—अब सब कुशल है बहन, सदा के लिए कुशल है । कोई चिन्ता ही नहीं रही । अब यहाँ जीवन-पर्यंत रहने को तैयार हूँ । तुम्हारे स्नेह और कृपा का मूल्य अब समझ रही हूँ ।

उसने एक ठंढी साँस ली और सजल नेत्रों से बोली—तुम्हें बाहर की ख़बरें क्या मिली होंगी। परसों शहर में गोलियाँ चलीं। देहातों में आजकल संगीनों की नोक से लगान वसूल किया जा रहा है। किसानों के पास रुपए हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें। अनाज का भाव दिन-दिन गिरता जाता है। पौने दो रुपए में मन भर गेहूँ आता है। मेरी उम्र ही अभी क्या है, अम्माँजी भी कहती हैं कि अनाज इतना सस्ता कभी नहीं था। खेत की उपज से बीजों तक के दाम नहीं आते। मेहनत और सिंचाई इसके ऊपर। ग़रीब किसान लगान कहाँ से दें। उस पर सरकार का हुक्म है, कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाय। किसान इस पर भी राज़ी हैं, कि हमारी जमा-जत्था नीलाम कर लो, घर कुर्क कर लो, अपनी ज़मीन ले लो; मगर यहाँ तो अधिकारियों को अपनी कारगुज़ारी दिखाने की फ़िक्र पड़ी हुई है। वह चाहे प्रजा को चक्की में पीस ही क्यों न डालें, सरकार उन्हें मना न करेगी। मैंने सुना है, कि वह उलटे और शह देती है। सरकार को तो अपने कर से मतलब है। प्रजा मरे या जिये, उससे कोई प्रयोजन नहीं। अकसर ज़मींदारों ने तो लगान वसूल करने से इन्कार कर दिया है। अब पुलीस उनकी मदद पर भेजी गई है। भैरोगंज का सारा इलाका लूटा जा रहा है। मरता क्या न करता, किसान भी घर-बार छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं। एक किसान के घर में घुसकर कई कांसटेबलों ने उसे पीटना शुरू किया। बेचारा बैठा मार खाता रहा। उसकी स्त्री से न रहा गया। शामत की मारी कांसटेबलों को कुवचन कहने लगी। बस, एक सिपाही ने उसे नंगा कर दिया। क्या कहूँ बहन, कहते शर्म आती है। हमारे ही भाई इतनी निर्दयता करें, इससे ज्यादा दुःख और लज्जा की और क्या बात होगी? अब किसान से ज़ब्त न

हुआ । कभी पेट भर गरीबों को खाने को तो मिलता नहीं, इस पर इतना कठोर परिश्रम ! न देह में बल है, न दिल में हिम्मत ; पर मनुष्य का हृदय ही तो ठहरा । बेचारा बेदम पड़ा हुआ था । स्त्री का चिल्लाना सुनकर उठ बैठा और उस दुष्ट सिपाही को धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दिया । फिर दोनो में कुश्तमकुश्ती होने लगी । एक किसान किसी पुलीस के आदमी के साथ इतनी बेअदबी करे, इसे भला वह कहीं बर-दाश्त कर सकती है । सब कांसटेबलों ने ग़रीब को इतना मारा, कि वह मर गया ।

क्षमा ने कहा—गाँव के और लोग तमाशा देखते रहे होंगे ?

मृदुला तीव्र कंठ से बोली—बहन, प्रजा की तो हर तरह से मरन है । अगर दस-बीस आदमी जमा हो जाते, तो पुलीस कहती, हमसे लड़ने आये हैं । डंडे चलाने शुरू करती और अगर कोई आदमी क्रोध में आकर एकाध कंकड़ फेंक देता, तो गोलियाँ चला देती । दस-बीस आदमी भुन जाते । इसी लिए लोग जमा नहीं होते ; लेकिन जब वह किसान मर गया, तो गाँववालों को तैश आ गया । लाठियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े और कांसटेबलों को घेर लिया । संभव है, दो-चार आदमियों ने लाठियाँ चलाई भी हों । कांस्टेबलों ने गोलियाँ चलानी शुरू कीं । दो-तीन सिपाहियों के हलकी चोटें आईं । उसके बदले में बारह आद-मियों की जानें ले ली गईं और कितनों ही के अंग भंग कर दिये गये । इन छोटे-छोटे आदमियों को इसी लिए तो इतने अधिकार दिये गये हैं, कि वे उनका दुरुपयोग करें । आधे गाँव का क़त्लाम करके पुलीस विजय के नगाड़े बजाती हुई लौट गई । गाँववालों की फ़रियाद कौन सुनता । ग़रीब हैं, बेकस हैं, अपंग हैं, जितने आदमियों को चाहो, मार डालो । अदालत और हाकिमों से तो उन्होंने न्याय की आशा करना ही छोड़ दिया ।

आख़िर सरकार ही ने तो कांसटेबलों को यह मुहिम सर करने के लिए भेजा था। वह किसानों की फ़रियाद क्यों सुनने लगी। मगर आदमी का दिल फ़रियाद किये बग़ैर नहीं मानता। गाँववालों ने अपने शहर के भाइयों से फ़रियाद करने का निश्चय किया। जनता और कुछ नहीं कर सकती, हमदर्दी तो करती है। दुःख-कथा सुनकर आँसू तो बहाती है। दुखियारों को हमदर्दी के आँसू भी कम प्यारे नहीं होते। अगर आस-पास के गाँवों के लोग जमा होकर उनके साथ रो लेते, तो ग़रीबों के आँसू पुँछ जाते; किन्तु पुलीस ने उस गाँव की नाकेबंदी कर रखी थी, चारो सीमाओं पर पहरे बिठा दिये गये थे। यह घाव पर नमक था। मारते भी हो और रोने भी नहीं देते। आख़िर लोगों ने लाशें उठाईं और शहरवालों को अपनी विपत्ति की कथा सुनाने चले। इस हंगामे की ख़बर पहले ही शहर में पहुँच गई थी। इन लाशों को देखकर जनता उत्तेजित हो गई और जब पुलीस के अध्यक्ष ने इन लाशों का जुलूस निकालने की अनुमति न दी, तो लोग और भी झल्लाये। बहुत बड़ा जमाव हो गया। मेरे बाबूजी भी इसी दल में थे। समझाती रही— मत जाओ, आज का रंग अच्छा नहीं है। कहने लगे—मैं किसी से लड़ने थोड़े ही जाता हूँ। जब सरकार की आज्ञा के विरुद्ध जनाज़ा चला तो पचास हज़ार आदमी साथ थे। उधर पाँच सौ सशस्त्र पुलीस रास्ता रोके खड़ी थी—सवार, प्यादे, सारजन्ट— पूरी फौज थी। हम निहत्थों के सामने इन नामर्दों को तलवारें चमकाते और झंकारते शर्म भी नहीं आती! जब बार-बार पुलीस की धमकियों पर भी लोग न भागे, तो गोलियाँ चलाने का हुक्म हो गया। घंटे भर बराबर फैर होते रहे, पूरे घंटे भर तक! कितने मरे, कितने घायल हुए, कौन जानता है। मेरा मकान सड़क पर है। मैं छज्जे पर

खड़ी, दोनो हाथों से दिल को थामे, काँपती थी। पहली बाढ़ चलते ही भगदड़ पड़ गई। हज़ारों आदमी बदहवास भागे चले आ रहे थे। बहन! वह दृश्य अभी तक आँखों के सामने है। कितना भीषण, कितना रोमांचकारी और कितना लज्जास्पद! ऐसा जान पड़ता था, कि लोगों के प्राण आँखों से निकले पड़ते हैं; मगर इन भागनेवालों के पीछे वीर-व्रतधारियों का दल था, जो पर्वत की भाँति अटल खड़ा छातियों पर गोलियाँ खा रहा था और पीछे हटने का नाम न लेता था। बन्दूकों की आवाज़ें साफ़ सुनाई देती थीं और हरेक धायँ-धायँ के बाद हज़ारों गलों से 'जय' की गहरी गगन-भेदी ध्वनि निकलती थी। उस ध्वनि में कितनी उत्तेजना थी! कितना आकर्षण! कितना उन्माद! बस यही जी चाहता था, कि जाकर गोलियों के सामने खड़ी हो जाऊँ और हँसते-हँसते मर जाऊँ। उस समय ऐसा भास होता था, कि मर जाना कोई खेल है। अम्माँजी कमरे में भान को लिये मुझे बार-बार भीतर बुला रही थीं। जब मैं न गई, तो वह भान को लिये हुए छज्जे पर आ गईं। उसी वक्त दस-बारह आदमी एक स्ट्रेचर पर हृदयेश की लाश लिये हुए द्वार पर आये। अम्माँ की उन पर नज़र पड़ी। समझ गईं। मुझे तो सकता-सा हो गया। अम्माँ ने जाकर एक बार बेटे को देखा, उसे छाती से लगाया, चूमा, आशीर्वाद दिया और उन्मत्त दशा में चौरस्ते की तरफ़ चलीं, जहाँ से अब भी धाँय और जय की ध्वनि बारी-बारी से आ रही थी। मैं हतबुद्धि-सी खड़ी कभी स्वामी की लाश को देखती थी, कभी अम्माँ को। न कुछ बोली, न जगह से हिली, न रोई, न घबड़ाई। मुझमें जैसे स्पन्दन ही न था। चेतना जैसे लुप्त हो गई हो।

क्षमा—तो क्या अम्माँ भी गोलियों के स्थान पर पहुँच गईं?

मृदुला—हाँ, यही तो विचित्रता है बहन। बंदूक की आवाज़ सुनकर कानों पर हाथ रख लेती थीं। खून देखकर मूर्छित हो जाती थीं। वही अम्माँ वीर सत्याग्रहियों की सफ़ों को चीरती हुई सामने खड़ी हो गई और एक ही क्षण में उनकी लाश भी ज़मीन पर गिर पड़ी। उनके गिरते ही योद्धाओं का धैर्य टूट गया, व्रत का बन्धन टूट गया। सभी के सिरों पर खून-सा सवार हो गया। निहत्थे थे, अशक्त थे; पर हरेक अपने अन्दर अपार शक्ति का अनुभव कर रहा था। पुलीस पर धावा कर दिया। सिपाहियों ने इस बाढ़ को आते देखा तो होश जाते रहे। जानें लेकर भागे; मगर भागते हुए भी गोलियाँ चलाते जाते थे। भान छज्जे पर खड़ा था, न-जाने किधर से एक गोली आ उसकी छाती में लगी। मेरा लाल वहीं पर गिर पड़ा, साँस तक न ली; मगर मेरी आँखों में अब भी आँसू न थे। मैंने प्यारे भान को गोद में उठा लिया। उसकी छाती से खून के फौवारे निकल रहे थे। मैंने उसे जो दूध पिलाया था, उसे वह खून से अदा कर रहा था। उसके खून से तर कपड़े पहने हुए मुझे वह नशा हो रहा था, जो शायद उसके विवाह में गुलाल से तर रेशमी कपड़े पहनकर भी न होता। लड़कपन, जवानी और मौत! तीनो मंज़िलें एक ही हिचकी में तमाम हो गईं। मैंने बेटे को बाप की गोद में लेटा दिया। इतने ही में कई स्वयंसेवक अम्माँजी को भी लाये। मालूम होता था, लेटी हुई मुस्किरा रही हैं। मुझे तो रोकती रहती थीं और खुद इस तरह जाकर आग में कूद पड़ीं, मानो वह स्वर्ग का मार्ग हो। बेटे ही के लिए जीती थीं, बेटे को अकेले कैसे छोड़तीं?

जब नदी के किनारे तीनो लाशें एक ही चिता में रखी गईं, तब मेरा सकता टूटा, होश आया। एक बार जी में आया चिता में जा

बैठूँ। सारा कुन्बा एक साथ ईश्वर के दरबार में जा पहुँचे ; लेकिन फिर सोचा—तूने अभी ऐसा कौन-सा काम किया है, जिसका इतना ऊँचा पुरस्कार मिले ? बहन ! चिता की लपटों में मुझे ऐसा मालूम हो रहा था, कि अम्माँजी सचमुच भान को गोद में लिये बैठी मुसकिरा रही हैं, और स्वामीजी खड़े मुझसे कह रहे हैं, तुम जाओ और निश्चिन्त होकर काम करो। उनके मुख पर कितना तेज था ! रक्त और अग्नि ही में तो देवता बनते हैं।

मैंने सिर उठाकर देखा। नदी के किनारे न-जाने कितनी चिताएँ जल रही थी। दूर से ये चितावली ऐसी मालूम होती थीं, मानो देवताओं ने भारत का भाग्य गढ़ने के लिए भट्टियाँ जलाई हों।

जब चिताएँ राख हो गईं, तो हम लोग लौटे ; लेकिन उस घर में जाने की हिम्मत न पड़ी। मेरे लिए अब वह घर न था। मेरा घर तो अब यह है, जहाँ बैठी हूँ, या फिर वही चिता। मैंने घर का द्वार भी नहीं खोला। महिला-आश्रम में चली गई। कल की गोलियों में कांग्रेस-कमेटी का सफ़ाया हो गया था। यह संस्था बाग़ी बना डाली गई थी। उसके दफ़्तर पर पुलिस ने छापा मारा और उस पर अपना ताला डाल दिया। महिला-आश्रम पर भी हमला हुआ। उस पर भी ताला डाल दिया गया। हमने एक वृक्ष की छाँह में अपना नया दफ़्तर बनाया और स्वच्छन्दता के साथ काम करते रहे। यहाँ दीवारें हमें क़ैद न कर सकती थीं। हम भी वायु के समान मुक्त थे।

संध्या समय हमने एक जुलूस निकालने का फैसला किया। कल के रक्तपात की स्मृति, हर्ष और मुबारकबाद में जुलूस निकालना आवश्यक था। लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है। इससे यह सिद्ध होता है, कि हम जीवित हैं, अटल हैं और मैदान से हटे

नहीं हैं। हमें अपने हार न माननेवाले आत्माभिमान का प्रमाण देना था। हमें यह दिखाना था, कि हम गोलियों और अत्याचारों से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से हटनेवाले नहीं और हम उस व्यवस्था का अन्त करके रहेंगे, जिसका आधार स्वार्थपरता और खून पर है। उधर पुलीस ने भी जुलूस को रोककर अपनी शक्ति और विजय का प्रमाण देना आवश्यक समझा। शायद जनता को धोखा हो गया हो, कि कल की दुर्घटना ने नौकरशाही के नैतिक ज्ञान को जागृत कर दिया है। इस धोखे को दूर करना उसने अपना कर्तव्य समझा। वह यह दिखा देना चाहती थी, कि हम तुम्हारे ऊपर शासन करने आये हैं और शासन करेंगे। तुम्हारी खुशी या नाराज़ी की हमें परवा नहीं है। जुलूस निकालने की मनाही हो गई। जनता को चेतावनी दे दी गई, कि ख़बरदार, जुलूस में न आना, नहीं दुर्गति होगी। इसका जनता ने वह जवाब दिया, जिसने अधिकारियों की आँखें खोल दी होंगी। संध्या समय पचास हज़ार आदमी जमा हो गये। आज का नेतृत्व मुझे सौंपा गया था। मैं अपने हृदय में एक विचित्र बल और उत्साह का अनुभव कर रही थी। एक अबला स्त्री, जिसे संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं, जिसने कभी घर से बाहर पाँव नहीं निकाला, आज अपने प्यारों के उत्सर्ग की बदौलत उस महान् पद पर पहुँच गई थी, जो बड़े-बड़े अफ़सर को भी, बड़े से बड़े महाराजा को भी प्राप्त नहीं—मैं इस समय जनता के हृदय पर राज कर रही थी। पुलीस अधिकारियों की इसलिए गुलामी करती है, कि उसे वेतन मिलता है। पेट की गुलामी उससे सब कुछ करवा लेती है। महाराजा का हुक्म लोग इसलिए मानते हैं, कि उससे उपकार की आशा या हानि का भय होता है। यह अपार जनसमूह क्या मुझसे किसी फ़ायदे की आशा रखता था, या उसे

मुझसे किसी हानि का भय था ? कदापि नहीं। फिर भी वह मेरे कड़े से कड़े हुक्म को मानने के लिए तैयार था। इसी लिए कि जनता मेरे बलिदानों का आदर करती थी ; इसी लिए कि उनके दिलों में स्वाधीनता की जो तड़प थी, गुलामी की जंजीरों को तोड़ देने की जो बेचैनी थी, मैं उस तड़प और बेचैनी की सजीव मूर्ति समझी जा रही थी। निश्चित समय पर जुलूस ने प्रस्थान किया। उसी वक्त पुलीस ने मेरी गिरफ़्तारी का वारंट दिखाया। वारंट देखते ही तुम्हारी याद आई। पहले तुम्हें मेरी ज़रूरत थी। अब मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। उस वक्त तुम मेरी हमदर्दी की भूखी थीं, अब मैं तुमसे सहानुभूति की भिक्षा माँग रही हूँ। मगर मुझमें अब लेशमात्र भी दुर्बलता नहीं है। मैं चिन्ताओं से मुक्त हूँ। मैजिस्ट्रेट जो कठोर से कठोर दंड प्रदान करे, उसका स्वागत करूँगी। अब मैं पुलीस के किसी आक्षेप या असत्य आरोपण का प्रतिवाद न करूँगी ; क्योंकि मैं जानती हूँ, मैं जेल के बाहर रहकर जो कुछ कर सकती हूँ जेल के अन्दर रहकर उससे कहीं ज्यादा कर सकती हूँ। जेल के बाहर भूलों की संभावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्द्धा की चिन्ता है। जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है, जिसके भीतर शैतान क़दम नहीं रख सकता। मैदान में जलता हुआ अलाव वायु में अपनी उष्णता को खो देता है ; लेकिन इञ्जिन में बन्द होकर वही आग संचालन-शक्ति का अखण्ड भण्डार बन जाती है।

अन्य देवियाँ भी आ पहुँचीं और मृदुला सबसे गले मिलने लगी। फिर 'भारत माता की जय'-ध्वनि जेल की दीवारों को चीरती हुई आकाश में जा पहुँची।

क़ानूनी कुमार

(**मि०** क़ानूनी कुमार, एम्० एल्० ए० अपने आफ़िस में समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रिपोर्टों का एक ढेर लिये बैठे हैं। देश की चिंताओं से उनकी देह स्थूल हो गई है। सदैव देशोद्धार की फ़िक्र में पड़े रहते हैं। सामने पार्क है। उसमें कई लड़के खेल रहे हैं, कुछ परदेवाली स्त्रियाँ हैं, फ़ेंसिंग के सामने बहुत-से भिखमंगे बैठे हुए हैं, एक चायवाला एक वृक्ष के नीचे चाय बेच रहा है।)

क़ानूनी कुमार—(आप ही आप) देश की दशा कितनी ख़राब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस, दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। (पार्क की ओर देखकर) आह! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। शोक, महाशोक! कोई कुछ नहीं कहता, कोई इसके रोकने की कोशिश नहीं करता। तम्बाकू कितनी ज़हरीली चीज़ है, बालकों को इससे कितनी हानि

होती है, यह कोई नहीं जानता। (तम्बाकू की रिपोर्ट देखकर) ओफ़ ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने बालक अपराधी होते हैं, उनमें ७५ प्रति सैकड़े सिगरेटबाज़ होते हैं। बड़ी भयंकर दशा है। हम क्या करें। लाख स्पीचें दो, कोई सुनता ही नहीं। इसको क़ानून से रोकना चाहिये, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। (क़ागज़ पर नोट करता है) तंबाकू-बहिष्कार-बिल पेश करूँगा। कौंसिल खुलते ही यह बिल पेश कर देना चाहिये।

(एक क्षण के बाद फिर पार्क की ओर ताकता है, और परदेदार महिलाओं को घास पर बैठे देखकर लम्बी साँस लेता है)

ग़ज़ब है, ग़ज़ब है, कितना घोर अन्याय ! कितना पाशविक व्यवहार ! यह कोमलांगी सुन्दरियाँ चादर में लिपटी हुई कितनी भद्दी, कितनी फूहड़ मालूम होती हैं। जभी तो देश का यह हाल हो रहा है। (रिपोर्ट देखकर) स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बढ़ रही है। भीषण गति से बढ़ रही है। तपेदिक उछलता चला आता है, प्रसूति की बीमारी आँधी की तरह चढ़ी आती है, और हम हैं कि आखें बन्द किये खड़े हैं। बहुत जल्द ऋषियों की यह भूमि, यह वीर-प्रसविनी जननी, रसातल को चली जायगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा। गवर्नमेंट को क्या फ़िक्र। लोग कितने पाषाण हो गये हैं। आँखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं, और ज़रा भी नहीं चौंकते। यह मृत्यु का शैथिल्य है। यहाँ भी क़ानून की ज़रूरत है। एक ऐसा क़ानून बनाना चाहिये, जिससे कोई स्त्री परदे में न रह सके। अब समय आ गया है कि इस विषय में सरकार क़दम बढ़ावे। क़ानून की मदद के बग़ैर कोई सुधार नहीं हो सकता, और यहाँ क़ानूनी

मदद की जितनी ज़रूरत है, उतनी और कहाँ हो सकती है। माताओं पर देश का भविष्य अवलम्बित है। परदा-हटाव-बिल पेश होना चाहिये, जानता हूँ बड़ा विरोध होगा; लेकिन गवर्नमेंट को साहस से काम लेना चाहिये, ऐसे नपुंसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा नहीं पड़नी चाहिये। (काग़ज़ पर नोट करता है) यह बिल भी असेंबली खुलते ही पेश कर देना होगा। बहुत विलंब हो चुका, अब विलंब की गुंजाइश नहीं है, वरना मरीज़ का अंत हो जायगा।

(मसौदा बनाने लगता है—हेतु और उद्देश्य—...)

सहसा एक भिक्षुक सामने आकर पुकारता है—जय हो सरकार की, लक्ष्मी फूलें-फलें,...

क़ानूनी—हट जाओ, यू सुअर, कोई काम क्यों नहीं करता?

भिक्षुक—बड़ा धर्म होगा सरकार, मारे भूख के आँखों तले अँधेरा...

क़ानूनी—चुप रहो सुअर, हट जाओ सामने से, अभी निकल जाओ, बहुत दूर निकल जाओ।

(मसौदा छोड़कर फिर आप ही आप)

यह ऋषियों की भूमि आज भिक्षुकों की भूमि हो रही है। जहाँ देखिये, वहाँ रेवड़-के-रेवड़ और दल-के-दल भिखारी! यह गवर्नमेंट की लापरवाई की बरकत है। इंगलैंड में कोई भिक्षुक भीख नहीं माँग सकता। पुलीस पकड़कर कालकोठरी में बंद कर दे। किसी सभ्य देश में इतने भिखमंगे नहीं हैं। यह पराधीन, गुलाम, भारत है, जहाँ ऐसी बातें इस बीसवीं सदी में भी संभव हैं। उफ़! कितना शक्ति का अपव्यय हो रहा है। (रिपोर्ट निकालकर) ओह! ५० लाख आदमी केवल भिक्षा माँगकर गुज़र करते हैं। और क्या ठीक है कि संख्या इसकी दुगनी

न हो। यह पेशा लिखाना कौन पसंद करता है। एक करोड़ से कम भिखारी इस देश में नहीं हैं। यह तो उन भिखारियों की बात हुई, जो द्वार-द्वार झोली लिये घूमते हैं। इसके उपरान्त टीकाधारी, कोपीन-धारी और जटाधारी समुदाय भी तो है, जिसकी संख्या कम से कम दो करोड़ होगी। जिस देश में इतने हरामख़ोर मुफ़्त का माल उड़ाने-वाले, दूसरों की कमाई पर मोटे होनेवाले प्राणी हों, उसकी दशा क्यों न इतनी हीन हो। आश्चर्य यही है कि अब तक यह देश जीवित कैसे है। (नोट करता है) एक बिल की सख्त ज़रूरत है, तुरंत पेश करना चाहिये—नाम हो 'भिखमंगा-बहिष्कार-बिल !' ख़ूब जूतियाँ चलेंगी, धर्म के सूत्रधार ख़ूब-ख़ूब नाचेंगे, ख़ूब गालियाँ देंगे, गवर्नमेंट भी कन्नी काटेगी; मगर सुधार का मार्ग तो कंटकाकीर्ण है ही। तीनों बिल मेरे ही नाम से हों, फिर देखिये कैसी खलबली मचती है।

(आवाज़ आती है—चाय गरम ! चाय गरम !! मगर ग्राहकों की संख्या बहुत कम है। क़ानूनी कुमार का ध्यान चायवाले की ओर आकर्षित हो जाता है)

क़ानूनी—(आप-ही-आप) चायवाले की दूकान पर एक भी ग्राहक नहीं, क्या मूर्ख देश है। इतनी बलवर्धक वस्तु और ग्राहक कोई नहीं ! सभ्य देशों में पानी की जगह चाय पी जाती है। (रिपोर्ट देखकर) केवल इंगलैंड में ५ करोड़ पौंड की चाय जाती है। इंगलैंडवाले मूर्ख नहीं हैं। उनका आज संसार पर आधिपत्य है, इसमें चाय का कितना बड़ा भाग है, कौन इसका अनुमान कर सकता है। और, यहाँ बेचारा चायवाला खड़ा है,और कोई उसके पास नहीं फटकता। चीनवाले चाय पी-पीकर स्वाधीन हो गये; मगर हम चाय न पीयेंगे। क्या अक़्ल है ! गवर्नमेंट का सारा दोष है। कीटों से भरे हुए दूध के लिए इतना शोर

मचता है। मगर चाय को कोई नहीं पूछता, जो कीटों से खाली, उत्तेजक और पुष्टिकारक है। सारे देश की मति मारी गई है। (नोट करता है) गवर्नमेंट से प्रश्न करना चाहिये। असेंबली खुलते ही प्रश्नों का ताँता बाँध दूँगा।

प्रश्न—क्या गवर्नमेंट बतायेगी कि गत पाँच सालों में भारतवर्ष में चाय की खपत कितनी बढ़ी है, और उसका सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए गवर्नमेंट ने क्या क़दम लिये हैं ?

(एक रमणी का प्रवेश। कटे हुए केश, आड़ी माँग, पारसी रेशमी साड़ी, क़लाई पर घड़ी, आँखों पर ऐनक, पाँव में ऊँची एड़ी के लेडी शू, हाथ में एक बटुवा लटकाये हुए, साड़ी में ब्रूच है, गले में मोतियों का हार।)

क़ानूनी—(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज़ बोस ! आप खूब आईं. कहिये, किधर की सैर हो रही है ? अबकी तो 'आलोक' में आपकी कविता बड़ी सुन्दर थी। मैं तो पढ़कर मस्त हो गया। इस नन्हें-से हृदय में इतने भाव कहाँ से आ जाते हैं ! मुझे आश्चर्य होता है। शब्द-विन्यास की तो आप रानी हैं। ऐसे-ऐसे चोट करनेवाले भाव आपको कैसे सूझ जाते हैं ?

मिसेज़ बोस—दिल जलता है, तो उसमें आप से आप धुएँ के बादल निकलते हैं। जब तक स्त्री-समाज पर पुरुषों का यह अत्याचार रहेगा, ऐसे भावों की कमी न रहेगी।

क़ानूनी—क्या इधर कोई नई बात हो गई ?

बोस—रोज़ ही होती रहती है। मेरे लिए डाक्टर बोस की आज्ञा नहीं कि किसी के घर मिलने जाओ, या कहीं सैर करने जाओ। अबकी कैसी गरमी पड़ी है कि सारा रक्त जल गया ; पर मैं पहाड़ों पर न जा सकी। मुझसे यह अत्याचार, यह गुलामी नहीं सही जाती।

क़ानूनी—डाक्टर बोस खुद भी तो पहाड़ों पर नहीं गये।

बोस—वह न जायँ, उन्हें धन की हाय-हाय पड़ी है। मुझे क्यों अपने साथ जलाते हैं। वह अगर अभागे हैं, तो अपने भाग्य को रोयें, मुझे क्यों अपने साथ लिये मरते हैं? वह क्लब नहीं जाना चाहते, उनका समय रुपए उगलता है, मुझे क्यों रोकते हैं? वह खद्दर पहनें, मुझे क्यों अपने पसन्द के कपड़े पहनने से रोकते हैं? वह अपनी माता और भाइयों के गुलाम बने रहें, मुझे क्यों उनके साथ रो-रोकर दिन काटने पर मजबूर करते हैं? मुझसे यह बरदाश्त नहीं हो सकता। अमेरिका में एक कटु वचन कहने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। पुरुष ज़रा देर से घर आया और स्त्री ने तलाक़ दिया। वह स्वाधीनता का देश है, वहाँ लोगों के विचार स्वाधीन हैं। यह गुलामों का देश है, यहाँ हर एक बात में उसी गुलामी की छाप है। मैं अब डाक्टर बोस के साथ नहीं रह सकती। नाकों दम आ गया। इसका उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर है, जो समाज के नेता और व्यवस्थापक बनते हैं। अगर आप चाहते हैं, कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर स्वाधीन हो जाँय, तो यह अनहोनी बात है। जब तक तलाक़ का कानून न जारी होगा, आप का स्वराज्य आकाश-कुसुम ही रहेगा। डाक्टर बोस को आप जानते हैं, धर्म में उनकी कितनी श्रद्धा है। ख़ब्त कहिये। मुझे धर्म के नाम से घृणा है। इसी धर्म ने स्त्री-जाति को पुरुष की दासी बना दिया है। मेरा बस चले, तो मैं सारे धर्म की पोथियों को उठाकर परनाले में फेंक दूँ।

(मिसेज़ ऐयर का प्रवेश। गोरा रङ्ग, ऊँचा क़द, ऊँचा गाउन, गोल हाँडी की-सी टोपी, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर पाउडर, गालों और ओंठों पर सूर्ख पेंट, रेशमी जुराबें और ऊँची एँड़ी के जूते।)

क़ानूनी—(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज़ ऐयर, आप ख़ूब आईं, कहिये किधर की सैर हो रही है ? 'आलोक' में अबकी आपका लेख अत्यन्त सुन्दर था, मैं तो पढ़कर दङ्ग रह गया।

मिसेज़ ऐयर—(मिसेज़ बोस की ओर मुसकिराकर) दंग ही तो रह गये, या कुछ किया भी ? हम स्त्रियाँ अपना कलेजा निकालकर रख दें; लेकिन पुरुषों का दिल न पसीजेगा।

बोस—सत्य ! बिलकुल सत्य !

ऐयर—मगर इस पुरुष-राज का बहुत जल्द अन्त हुआ जाता है। स्त्रियाँ अब क़ैद में नहीं रह सकतीं। मि० ऐयर की सूरत मैं नहीं देखना चाहती।

(मिसेज़ बोस मुँह फेर लेती हैं)

क़ानूनी (मुसकिराकर) मि० ऐयर तो खूबसूरत आदमी हैं।

लेडी ऐयर—उनकी सूरत उन्हें मुबारक रहे। मैं खूबसूरत पराधीनता नहीं चाहती, बदसूरत स्वाधीनता चाहती हूँ। वह मुझे अबकी ज़बरदस्ती पहाड़ पर ले गये। वहाँ की शीत मुझसे नहीं सही जाती, कितना कहा कि मुझे मत ले जाओ मगर किसी तरह न माने। मैं किसी के पीछे-पीछे कुतिया की तरह नहीं चलना चाहती।

(मिसेज़ बोस उठकर खिड़की के पास चली जाती हैं)

क़ानूनी—अब मुझे मालूम हो गया कि तलाक़ का बिल असेंबली में पेश करना पड़ेगा।

ऐयर—ख़ैर आपको मालूम तो हुआ। मगर शायद क़यामत में ?

क़ानूनी—नहीं मिसेज़ ऐयर, अबकी छुट्टियों के बाद ही यह बिल पेश होगा, और धूम-धाम के साथ पेश होगा। बेशक पुरुषों का अत्याचार बढ़ रहा है। जिस प्रथा का विरोध आप दोनो महिलायें कर

रही हों, वह अवश्य हिन्दू समाज के लिए घातक है; अगर हमें सभ्य बनना है, तो सभ्य देशों के पद-चिन्हों पर चलना पड़ेगा। धर्म के ठीकेदार चिल्ल-पों मचायेंगे, कोई परवाह नहीं। उनकी ख़बर लेना आप दोनो महिलाओं का काम होगा। ऐसा बनाना कि मुँह न दिखा सकें।

लेडी ऐयर—पेशगी धन्यवाद देती हूँ। (हाथ मिलाकर चली जाती है।)

मिसेज़ बोस—(खिड़की के पास से आकर) आज इसके घर में घी का चिराग़ जलेगा। यहाँ से सीधे बोस के पास गई होगी। मैं भी जाती हूँ।

(चली जाती है।)

क़ानूनी कुमार एक क़ानून की किताब उठाकर उसमें तलाक़ की व्यवस्था देखने लगता है, कि मि० आचार्या आते हैं। मुँह साफ, एक आँख पर ऐनक, खाकी आधे बाँह का शर्ट, निकर, ऊनी मोज़े, लंबे बूट। पीछे एक छोटा टेरियर कुत्ता भी है।

क़ानूनी—हल्लो मि० आचार्या, आप खूब आये, आज किधर की सैर हो रही है? होटल का क्या हाल है?

आचार्या—कुत्ते की मौत मर रहा है। इतना बढ़िया भोजन, इतना साफ़-सुथरा मकान, ऐसी रोशनी, इतना आराम, फिर भी मेह-मानों का दुर्भिक्ष। समझ में नहीं आता, अब कितना निर्ख़ घटाऊँ। इन दामों अलग घर में मोटा खाना भी नसीब नहीं हो सकता। उस पर सारे ज़माने की झंझट, कभी नौकर का रोना, कभी दूधवाले का रोना, कभी धोबी का रोना, कभी मेहतर का रोना। यहाँ सारे जंजाल से मुक्ति हो जाती है; फिर भी आधे कमरे ख़ाली पड़े हैं।

क़ानूनी—यह तो आपने बुरी ख़बर सुनाई।

आचार्या—पच्छिम में क्यों इतना सुख और शान्ति है, क्यों इतना प्रकाश और धन है, क्यों इतनी स्वाधीनता और बल है? इन्हीं होटलों के प्रसाद से। होटल पच्छिमी गौरव का मुख्य अंग हैं, पच्छिमी सभ्यता का प्राण है। अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल-जीवन का प्रचार कीजिये। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। जब तक छोटी-छोटी घरेलू चिन्ताओं से मुक्त न हो जायँगे, आप उन्नति कर ही नहीं सकते। राजों, रईसों को अलग घरों में रहने दीजिये, वह एक की जगह दस खर्च कर सकते हैं। मध्यम श्रेणीवालों के लिए होटल के प्रचार में ही सब कुछ है। हम अपने सारे मेहमानों की फिक्र अपने सिर लेने को तैयार हैं, फिर भी जनता की आँखें नहीं खुलतीं। इन मूर्खों की आँखें उस वक़्त तक न खुलेंगी, जब तक क़ानून न बन जायगा।

क़ानूनी—(गंभीर भाव से) हाँ, मैं भी सोच रहा हूँ। ज़रूर क़ानून से मदद लेनी चाहिये। एक ऐसा क़ानून बन जाय, कि जिन लोगों की आय ५००) से कम हो, वह होटलों में रहें। क्यों?

आचार्या - आप अगर यह क़ानून बनवा दें, तो आनेवाली संतान आपको अपना मुक्तिदाता समझेगी। आप एक क़दम में देश को ५०० वर्ष की मंज़िल तय करा देंगे।

क़ानूनी—तो लो अबकी यह क़ानून भी असेंबली खुलते ही पेश कर दूँगा। बड़ा शोर मचेगा। लोग देशद्रोही और जाने क्या-क्या कहेंगे; पर इसके लिए तैयार हूँ। कितना दुःख होता है, जब लोगों को अहीर के द्वार पर लुटिया लिये खड़ा देखता हूँ। स्त्रियों का जीवन तो नरक-तुल्य हो रहा है। सुबह से दस-बारह बजे रात तक घर के धंधों

से फ़ुरसत नहीं। कभी बरतन माँजो, कभी भोजन बनाओ, कभी झाड़ू लगाओ। फिर स्वास्थ्य कैसे बने, जीवन कैसे सुखी हो, सैर कैसे करें, जीवन के आमोद-प्रमोद का आनन्द कैसे उठावें। अध्ययन कैसे करें। आपने खूब कहा, एक क़दम में ५०० सालों की मञ्जिल पूरी हुई जाती है।

आचार्या—तो अबकी बिल पेश कर दीजियेगा ?

क़ानूनी—अवश्य !

(आचार्या हाथ मिलाकर चला जाता है।)

क़ानूनी कुमार खिड़की के सामने खड़ा होकर 'होटल-प्रचार-बिल' का मसविदा सोच रहा है। सहसा पार्क में एक स्त्री सामने से गुज़रती है। उसकी गोद में एक बच्चा है, दो बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं और उदर के उभार से मालूम होता है कि स्त्री गर्भवती भी है। उसका कृश शरीर, पीला मुख और मन्द गति देखकर अनुमान होता है कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है, और इस भार का वहन करना उसे कष्टप्रद है।

क़ानूनी कुमार—(आप ही आप) इस समाज का, इस देश का, और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख ! कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल में फँसकर ३०—३५ की अवस्था में, जब कि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिये, रुग्ण होकर संसार-यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत ! यह विपत्ति तेरे सर से कब टलेगी ! संसार में ऐसे-ऐसे पाषाण-हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इन दुखियारियों पर ज़रा भी दया नहीं आती। ऐसे अन्धे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखण्डी समाज को, जो स्त्री को अपनी वासनाओं की वेदी पर

बलिदान करता है, क़ानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय। और कोई उपाय नहीं है। नर-हत्या का जो दण्ड है, वही दण्ड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिये। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जायगा—स्त्री का मरण, बच्चों का मरण, और जिस समाज का जीवन ऐसी संतानों पर आधारित हो उसका मरण! ऐसे बदमाशों को क्यों न दण्ड दिया जाय। कितने अन्धे लोग हैं। बेकारी का यह हाल कि आधी जन-संख्या मक्खियाँ मार रही है, आमदनी का यह हाल कि भरपेट किसी को रोटियाँ नहीं मिलतीं, बच्चों को दूध स्वप्न में भी नहीं मिलता, और यह अन्धे हैं कि बच्चे पर बच्चे पैदा करते जाते हैं। 'संतान-निग्रह-बिल' को इस समय देश को जितनी ज़रूरत है उतनी और किसी क़ानून की नहीं। असेंबली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जायगी, यह जानता हूँ। पर और उपाय ही क्या है। दो बच्चे से ज्यादा जिसके हों उसे कम से कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो। जिसकी आमदनी १००) से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो। (मन में उस बिल के बाद की अवस्था का आनन्द लेकर) कितना सुखमय जीवन हो जायगा। हाँ, एक दफ़ा यह भी रहे कि एक सन्तान के बाद कम से कम ७ वर्ष तक दूसरी सन्तान न आने पावे। तब इस देश में सुख और सन्तोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नज़र आयेगी, तब मज़बूत हाथ-पाँव और मज़बूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होंगे।

(मिसेज़ क़ानूनी कुमार का प्रवेश)

क़ानूनी कुमार जल्दी से रिपोर्टों और पत्रों को समेट देता है, और उपन्यास खोलकर बैठ जाता है।

मिसेज़—क्या कर रहे हो ? वही धुन ?

क़ानूनी—एक उपन्यास पढ़ रहा हूँ।

मिसेज़—तुम सारी दुनिया के लिए क़ानून बनाते हो, एक क़ानून मेरे लिए भी बना दो, इससे देश का जितना बड़ा उपकार होगा, उतना और किसी क़ानून से न होगा ; तुम्हारा नाम अमर हो जायगा, और घर-घर तुम्हारी पूजा होगी।

क़ानूनी—अगर तुम्हारा ख़याल है कि मैं नाम और यश के लिए देश की सेवा कर रहा हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने मुझे रत्ती भर भी नहीं समझा।

मिसेज़—नाम के लिए काम करना कोई बुरा काम नहीं है, और तुम्हें यश की आकांक्षा हो, तो मैं उसकी निन्दा न करूँगी। भूलकर भी नहीं। मैं तुम्हें एक ही ऐसी तदबीर बता दूँगी, जिससे तुम्हें इतना यश मिलेगा कि तुम ऊब जाओगे। फूलों की इतनी वर्षा होगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे। गले में इतने हार पड़ेंगे कि तुम गरदन सीधी न कर सकोगे !

क़ानूनी—(उत्सुकता को छिपाकर)—कोई मज़ाक की बात होगी। देखो मिन्नी, काम करनेवाले आदमी के लिए इससे बड़ी दूसरी बाधा नहीं है कि उसके घरवाले उसके काम की निन्दा करते हों। मैं तुम्हारे इस व्यवहार से निराश हो जाता हूँ।

मिसेज़—तलाक़ का कानून तो बनाने जा रहे हो, अब क्या डर है।

क़ानूनी—फिर वही मजाक़। मैं चाहता हूँ, तुम इन प्रश्नों पर गंभीर विचार करो।

मिसेज़—मैं बहुत गंभीर विचार करती हूँ। सच मानो। मुझे

इसका दुःख है कि तुम मेरे भावों को नहीं समझते। मैं इस वक्त तुमसे जो बात कहने जा रही हूँ, उसे मैं देश की उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक समझती हूँ। मुझे इसका पक्का विश्वास है।

क़ानूनी—पूछने की हिम्मत तो नहीं पड़ती (अपनी झेंप मिटाने के लिए हँसता है।)

मिसेज़—मैं तो खुद ही कहने आई हूँ। हमारा वैवाहिक जीवन कितना लज्जास्पद हैं, तुम खूब जानते हो। रात-दिन रगड़ा-झगड़ा मचा रहता है। कहीं पुरुष स्त्री पर हाथ साफ़ करता है, कहीं स्त्री पुरुष की मूछों के बाल नोचती है। हमेशा एक न एक गुल खिला ही करता है। कहीं एक मुँह फुलाये बैठा है, कहीं दूसरा घर छोड़कर भाग जाने की धमकी दे रहा है। कारण जानते हो क्या है ? कभी सोचा है ? पुरुषों की रसिकता और कृपणता ! यही दोनो ऐब मनुष्य के जीवन को नरक-तुल्य बनाये हुए हैं। जिधर देखो अशान्ति है, विद्रोह है, बाधा है। साल में लाखों हत्याएँ इन्हीं बुराइयों के कारण हो जाती हैं, लाखों स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं, पुरुष मद्य-सेवन करने लगते हैं। बोलो यह बात है या नहीं ?

क़ानूनी—बहुत-सी बुराइयाँ ऐसी हैं जिन्हें क़ानून नहीं रोक सकता।

मिसेज़—(क़हक़हा मारकर) अच्छा, क्या आप भी क़ानून की अक्षमता स्वीकार करते हैं ? मैं यह न समझती थी। मैं तो क़ानून को ईश्वर से ज्यादा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान समझती हूँ।

क़ानूनी—फिर तुमने मज़ाक शुरू किया।

मिसेज़—अच्छा लो कान पकड़ती हूँ। अब न हँसूँगी। मैंने उन बुराइयों को रोकने का एक नमूना सोचा है। उसका नाम होगा 'दंपति-सुख-शान्ति-बिल'। उसकी दो मुख्य धाराएँ होंगी। और क़ानूनी

बारीकियाँ तुम ठीक कर लेना। एक धारा होगी कि पुरुष अपनी आमदनी का आधा बिना कान-पूँछ हिलाये स्त्री को दे दे। अगर न दे, तो पाँच साल कठिन कारावास और पाँच महीने काल-कोठरी। दूसरी धारा होगी पन्द्रह से पचास तक के पुरुष घर से बाहर न निकलने पायें। अगर कोई निकले, तो दस साल कारावास और दस महीने काल-कोठरी। बोलो मंजूर है?

क़ानूनी—(गंभीर होकर) असंभव! तुम प्रकृति को पलट देना चाहती हो। कोई पुरुष घर में क़ैदी बनकर रहना स्वीकार न करेगा।

मिसेज़—वह करेगा और उसका बाप करेगा। पुलीस डंडे के ज़ोर से करायेगी। न करेगा तो चक्की पीसनी पड़ेगी। करेगा कैसे नहीं? अपनी स्त्री को घर की मुर्गी समझना, और दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ना क्या ख़ालाजी का घर है। तुम अभी इस क़ानून को अस्वाभाविक समझते हो। मत घबड़ाओ। स्त्रियों का अधिकार होने दो। यह पहला क़ानून न बन जावे, तो कहना कोई कहता था। स्त्री एक-एक पैसे के लिए तरसे, और आप गुलछर्रे उड़ायें! दिल्लगी है! आधी आमदनी स्त्री को दे देनी पड़ेगी, जिसका उससे कोई हिसाब न पूछा जा सकेगा।

क़ानूनी—तुम मानव-समाज को मिट्टी का खिलौना समझती हो।

मिसेज़—कदापि नहीं। मैं यही समझती हूँ, कि क़ानून सब कुछ कर सकता है। मनुष्य का स्वभाव भी बदल सकता है।

क़ानूनी—क़ानून यह नहीं कर सकता।

मिसेज़—कर सकता है।

क़ानूनी—नहीं कर सकता।

मिसेज़—कर सकता है। अगर वह ज़बरदस्ती लड़कों को स्कूल भेज सकता है, अगर वह ज़बरदस्ती विवाह की उम्र नियत कर सकता

है, अगर वह ज़बरदस्ती बच्चों को टीका लगवा सकता है, तो वह ज़बरदस्ती पुरुषों को घर में बन्द भी कर सकता है, उनकी आमदनी का आधा स्त्रियों को दिला भी सकता है। तुम कहोगे पुरुष को कष्ट होगा। ज़बरदस्ती जो काम कराया जाता है, उसमें करनेवाले को कष्ट होता है। तुम उस कष्ट का अनुभव नहीं करते; इसीलिए वह तुम्हें नहीं अखरता। मैं यह नहीं कहती कि सुधार ज़रूरी नहीं है। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मैं भी बाल-विवाह बंद करना चाहती हूँ, मैं भी चाहती हूँ, बीमारियाँ न फैलें; लेकिन क़ानून बनाकर, ज़बरदस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती। लोगों में शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिसमें क़ानूनी भय के बग़ैर यह सुधार हो जाय। आपसे कुरसी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नहीं, शहरों की विलासिता को एक दिन के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का। इस तरह सुधार न होगा, हाँ, पराधीनता की बेड़ी और कठोर हो जायगी।

(मिसेज़ कुमार चली जाती हैं, और क़ानूनी कुमार अव्यवस्थित चित्त-सा कमरे में टहलने लगता है।)

पत्नी से पति

मिस्टर सेठ को सभी हिंदुस्तानी चीज़ों से नफ़रत थी और उनकी सुन्दरी पत्नी गोदावरी को सभी विदेशी चीज़ों से चिढ़। मगर धैर्य और विनय भारत की देवियों का आभूषण है। गोदावरी दिल पर हज़ार जब्र करके पति की लाई हुई विदेशी चीज़ों का व्यवहार करती थी, हालाँकि भीतर ही भीतर उसका हृदय अपनी परवशता पर रोता था। वह जिस वक्त अपने छज्जे पर खड़ी होकर सड़क पर निगाह दौड़ाती और कितनी ही महिलाओं को खद्दर की साड़ियाँ पहने गर्व से सिर उठाये चलते देखती, तो उसके भीतर की वेदना एक ठंढी आह बनकर निकल जाती थी। उसे ऐसा मालूम होता था, कि मुझसे ज्यादा बद-नसीब औरत संसार में नहीं है। मैं अपने स्वदेशवासियों की इतनी भी सेवा नहीं कर सकती! शाम को मिस्टर सेठ के आग्रह करने पर वह कहीं मनोरंजन या सैर के लिए जाती, तो विदेशी कपड़े पहिने हुए

निकलते शर्म से उसकी गर्दन झुक जाती थी। वह पत्रों में महिलाओं के जोश भरे व्याख्यान पढ़ती, तो उसकी आँखें जगमगा उठतीं, थोड़ी देर के लिए वह भूल जाती, कि मैं यहाँ बन्धनों से जकड़ी हुई हूँ।

होली का दिन था, आठ बजे रात का समय। स्वदेश के नाम पर बिके हुए अनुरागियों का जुलूस आकर मिस्टर सेठ के मकान के सामने रुका, और उसी चौड़े मैदान में विलायती कपड़ों की होलियाँ लगाने की तैयारियाँ होने लगीं। गोदावरी अपने कमरे में खिड़की पर खड़ी यह समारोह देखती थी और दिल मसोसकर रह जाती थी। एक वह हैं, जो यों खुश-खुश, आजादी के नशे से मतवाले, गर्व से सिर उठाये होली लगा रहे हैं, और एक मैं हूँ कि पिंजड़े में बन्द पत्ती की तरह फड़फड़ा रही हूँ। इन तीलियों को कैसे तोड़ दूँ? उसने कमरे में निगाह दौड़ाई। सभी चीजें विदेशी थीं। स्वदेश का एक सूत भी न था। यही चीज़ें वहाँ जलाई जा रही थीं और वही चीज़ें यहाँ उसके हृदय में संचित ग्लानि की भाँति संदूकों में रखी हुई थीं। उसके जी में एक लहर उठ रही थी, कि इन चीज़ों को उठाकर उसी होली में डाल दे। उसकी सारी ग्लानि और दुर्बलता जलकर भस्म हो जाय; मगर पति की अप्रसन्नता के भय ने उसका हाथ पकड़ लिया। सहसा मि० सेठ ने अन्दर आकर कहा—ज़रा इन सिरफिरों को देखो, कपड़े जला रहे हैं। यह पागलपन, उन्माद और विद्रोह नहीं, तो और क्या है। किसी ने सच कहा है, हिन्दुस्तानियों को न अक्ल आई है, न आयेगी। कोई कल भी तो सीधी नहीं।

गोदावरी ने कहा—तुम भी हिन्दुस्तानी हो।

सेठ ने गर्म होकर कहा—हाँ; लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है, कि ऐसे अभागे देश में क्यों पैदा हुआ। मैं नहीं चाहता

कि कोई मुझे हिन्दुस्तानी कहे या समझे। कम से कम मैंने आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, रीति-नीति, कर्म-वचन में कोई ऐसी बात नहीं रखी, जिससे हमें कोई हिन्दुस्तानी होने का कलंक लगाये। पूछिये, जब हमें आठ आने गज़ में बढ़िया कपड़ा मिलता है, तो हम क्यों मोटा टाट खरीदें। इस विषय में हरएक को पूरी स्वाधीनता होनी चाहिये। न जाने क्यों गवर्नमेन्ट ने इन दुष्टों को यहाँ जमा होने दिया। अगर मेरे हाथ में अधिकार होता, तो सबों को जहन्नुम रसीद कर देता। तब आटे-दाल का भाव मालूम होता।

गोदावरी ने अपने शब्दों में तीक्ष्ण तिरस्कार भरके कहा—तुम्हें अपने भाइयों का जरा भी ख्याल नहीं आता? भारत के सिवा और भी कोई देश है, जिस पर किसी दूसरी जाति का शासन हो? छोटे-छोटे राष्ट्र भी किसी दूसरी जाति के गुलाम बनकर नहीं रहना चाहते। क्या हिन्दुस्तान के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि वह अपने थोड़े से फ़ायदे के लिए सरकार का साथ देकर अपने ही भाइयों के साथ अन्याय करे?

सेठ ने भौंहें चढ़ाकर कहा—मैं इन्हें अपना भाई नहीं समझता।

गोदावरी—आख़िर तुम्हें सरकार जो वेतन देती है, वह इन्हीं की जेब से तो आता है।

सेठ—मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि मेरा वेतन किसकी जेब से आता है। मुझे जिसके हाथ से मिलता है, वह मेरा स्वामी है। न जाने इन दुष्टों को क्या सनक सवार हुई है। कहते हैं भारत आध्यात्मिक देश है। क्या अध्यात्म का यही आशय है, कि परमात्मा के विधानों का विरोध किया जाय? जब यह मालूम है, कि परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध एक पत्ती भी नहीं हिल सकती, तो यह कैसे मुमकिन है, कि यह

इतना बड़ा देश परमात्मा की मर्जी बग़ैर अँगरेज़ों के आधीन हो? क्यों इन दीवानों को इतनी अक्ल नहीं आती, कि जब तक परमात्मा की इच्छा न होगी, कोई अँगरेज़ों का बाल भी बाँका न कर सकेगा।

गोदावरी—तो फिर क्यों नौकरी करते हो? परमात्मा की इच्छा होगी, तो आप ही आप भोजन मिल जायगा। बीमार होते हो, तो क्यों दौड़े हुए वैद्य के घर जाते हो? परमात्मा उन्हीं की मदद करता है, जो अपनी मदद आप करते हैं।

सेठ—बेशक करता है; लेकिन अपने घर में आग लगा देना, घर की चीज़ों को जला देना, ऐसे काम हैं, जिन्हें परमात्मा कभी पसन्द नहीं कर सकता।

गोदावरी—तो यहाँ के लोगों को चुपचाप बैठे रहना चाहिये?

सेठ—नहीं, रोना चाहिये। इस तरह रोना चाहिये, जैसे बच्चे माता के दूध के लिए रोते हैं।

सहसा होली जली, आग की शिखाएँ आसमान से बातें करने लगीं, मानो स्वाधीनता की देवी अग्नि-वस्त्र धारण किये हुए आकाश के देवताओं से गले मिलने जा रही हो।

दीनानाथ ने खिड़की बन्द कर दी, उनके लिए यह दृश्य भी असह्य था।

गोदावरी इस तरह खड़ी रही, जैसे कोई गाय क़साई के खूँटे पर खड़ी हो। उसी वक्त किसी के गाने की आवाज़ आई।

'वतन की देखिये तक़दीर कब बदलती है।'

गोदावरी के विषाद से भरे हुए हृदय में एक चोट लगी। उसने खिड़की खोल दी और नीचे की तरफ़ झाँका। होली अब भी जल रही

थी और वहीं एक अन्धा लड़का अपनी खंजरी बजाकर गा रहा था—

'वतन की देखिये तक़दीर कब बदलती है।'

वह खिड़की के सामने पहुँचा, तो गोदावरी ने पुकारा—ओ अंधे! खड़ा रह।

अंधा खड़ा हो गया। गोदावरी ने संदूक़ खोला; पर उसमें उसे एक पैसा मिला। नोट और रुपए थे; मगर अंधे फ़क़ीर को नोट या रुपए देने का तो सवाल ही न था। पैसे अगर दो-चार मिल जाते, तो इस वक्त वह ज़रूर दे देती; पर वहाँ एक ही पैसा था, वह भी इतना घिसा हुआ था, कि कहार बाज़ार से लौटा लाया था। किसी दूकानदार ने न लिया था। अंधे को वह पैसा देते हुए गोदावरी को शर्म आ रही थी। वह ज़रा देर तक पैसे को हाथ में लिये असमंजस में खड़ी रही। तब अंधे को बुलाया और पैसा दे दिया।

अंधे ने कहा—माताजी, कुछ खाने को दीजिये। आज दिन भर से कुछ नहीं खाया।

गोदावरी—दिन भर माँगता है, तब भी तुझे खाने को नहीं मिलता?

अंधा—क्या करूँ माता, कोई खाने को नहीं देता।

गोदावरी—इस पैसे का चबैना लेकर खा ले।

अंधा—खा लूँगा माताजी, भगवान् आपको खुसी रखे। अब यहीं सोता हूँ।

(२)

दूसरे दिन प्रातःकाल कांग्रेस की तरफ़ से एक आम जलसा हुआ। मिस्टर सेठ ने विलायती टूथ पाउडर विलायती ब्रुश से दाँतों पर मला, विलायती साबुन से नहाया, विलायती चाय विलायती प्यालियों में पी,

विलायती बिसकुट विलायती मक्खन के साथ खाया, विलायती दूध पिया। फिर विलायती सूट धारण करके विलायती सिगार मुँह में दबा-कर घर से निकले। और अपनी मोटर-साइकिल पर बैठकर फ़्लावर शो देखने चले गये।

गोदावरी को रात भर नींद नहीं आई थी, दुराशा और पराजय की कठिन यंत्रणा किसी कोड़े की तरह उसके हृदय पर पड़ रही थी। ऐसा मालूम होता था, कि उसके कंठ में कोई कड़वी चीज़ अटक गई है। मिस्टर सेठ को अपने प्रभाव में लाने की उसने वह सब योजनाएँ कीं, जो एक रमणी कर सकती है; पर उस भले आदमी पर उसके सारे हाव-भाव, मृदु-मुसकान और वाणी-विलास का कोई असर न हुआ। खुद तो स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार करने पर क्या राज़ी होते, गोदावरी के लिए एक खद्दर की साड़ी लाने पर भी सहमत न हुए। यहाँ तक कि गोदावरी ने उनसे कभी कोई चीज़ माँगने की क़सम खा ली।

क्रोध और ग्लानि ने उसकी सद्भावनाओं को इस तरह विकृत कर दिया, जैसे कोई मैली वस्तु निर्मल जल को दूषित कर देती है। उसने सोचा जब यह मेरी इतनी-सी बात भी नहीं मान सकते, तब फिर मैं क्यों इनके इशारों पर चलूँ, क्यों इनकी इच्छाओं की लौंडी बनी रहूँ? मैंने इनके हाथ कुछ अपनी आत्मा नहीं बेची है। अगर आज ये चोरी या ग़बन करें, तो क्या मैं सज़ा पाऊँगी? उसकी सज़ा ये खुद झेलेंगे। उसका अपराध इनके ऊपर होगा। इन्हें अपने कर्म और वचन का अख्तियार है, मुझे अपने कर्म और वचन का अख्तियार। यह अपनी सरकार की गुलामी करें, अँगरेज़ों की चौखट पर नाक रगड़ें, मुझे क्या ग़रज़ है, कि उसमें इनका सहयोग करूँ। जिसमें आत्माभिमान नहीं, जिसने अपने को स्वार्थ के हाथों बेच दिया, उसके प्रति अगर मेरे मन

में भक्ति न हो तो मेरा दोष नहीं। यह नौकर हैं या गुलाम? नौकरी और गुलामी में अन्तर है, नौकर कुछ नियमों के अधीन अपना निर्दिष्ट काम करता है, वह नियम स्वामी और सेवक दोनों ही पर लागू होते हैं; स्वामी अगर अपमान करे, अपशब्द कहे, तो नौकर उसको सहन करने के लिए मजबूर नहीं। गुलाम के लिए कोई शर्त नहीं, उसकी दैहिक गुलामी पीछे होती है, मानसिक गुलामी पहले ही हो जाती है। सरकार ने इनसे कब कहा है, कि देशी चीज़ें न ख़रीदो। सरकारी टिकटों पर तक यह शब्द लिखे होते हैं 'स्वदेशी चीज़ें खरीदो।' इससे विदित है कि सरकार देशी चीज़ों का निषेध नहीं करती। फिर भी यह महाशय सुर्ख़रू बनने की फ़िक्र में सरकार से भी दो अंगुल आगे बढ़ना चाहते हैं।

मिस्टर सेठ ने कुछ झेंपते हुए कहा—कल फ्ज़ावर शो देखने चलोगी?

गोदावरी ने विरक्त मन से कहा—नहीं।

'बहुत अच्छा तमाशा है।'

'मैं कांग्रेस के जलसे में जा रही हूँ।'

मिस्टर सेठ के ऊपर यदि छत गिर पड़ी होती या उन्होंने बिजली का तार हाथ से पकड़ लिया होता, तो भी वह इतने बदहवास न होते। आँखें फाड़कर बोले—तुम कांग्रेस के जलसे में जाओगी?

'हाँ ज़रूर जाऊँगी।'

'मैं नहीं चाहता कि तुम वहाँ जाओ।'

'अगर तुम मेरी परवा नहीं करते, तो मेरा धर्म नहीं कि तुम्हारी हरएक आज्ञा का पालन करूँ।'

मिस्टर सेठ ने आँखों में विष भरकर कहा—नतीजा बुरा होगा।

गोदावरी मानो तलवारके सामने छाती खोलकर बोली—इसकी चिंता नहीं, तुम किसी के ईश्वर नहीं हो।

मिस्टर सेठ खूब गर्म पड़े, धमकियाँ दीं, आख़िर मुँह फेरकर लेट रहे। प्रातःकाल फ़्लावर शो जाते समय भी उन्होंने गोदावरी से कुछ न कहा।

(३)

गोदावरी जिस समय कांग्रेस के जलसे में पहुँची, तो कई हज़ार मर्दों और औरतों का जमाव था। मंत्री ने चंदे की अपील की थी और कुछ लोग चंदे दे रहे थे। गोदावरी उस जगह खड़ी हो गई जहाँ और स्त्रियाँ जमा थीं और देखने लगी कि लोग क्या चंदा देते हैं। अधिकांश लोग दो-दो चार-चार आना ही दे रहे थे। वहाँ ऐसा धनवान् था ही कौन। उसने अपनी जेब टटोली, तो एक रुपया निकला। उसने समझा यह काफ़ी है। इस इंतजार में थी, कि झोली सामने आये, तो उसमें डाल दूँ। सहसा वही अंधा लड़का, जिसे उसने एक पैसा दिया था, न-जाने किधर से आ गया और ज्योंही चंदे की झोली उसके सामने पहुँची, उसने उसमें कुछ डाल दिया। सबकी आँखें उसकी तरफ़ उठ गईं। सबको कुतूहल हो रहा था, कि इस अंधे ने क्या दिया? कहीं एक-आध पैसा मिल गया होगा। दिन-भर गला फाड़ता है, तब भी तो उस बेचारे को रोटी नहीं मिलती। अगर यही गाना पिश्वाज़ और साज़ के साथ किसी महफ़िल में होता, तो रुपए बरसते; लेकिन सड़क पर गानेवाले अंधे की कौन परवा करता है!

झोली में पैसा डालकर अंधा वहाँ से चल दिया और कुछ दूर जाकर गाने लगा।

'वतन की देखिये तक़दीर कब बदलती है।'

सभापति ने कहा—मित्रो, देखिये, यह वह पैसा है, जो एक ग़रीब अन्धा लड़का इस झोली में डाल गया है। मेरी आँखों में इस एक पैसे की क़ीमत किसी अमीर के एक हज़ार रुपए से कम नहीं। शायद यही इस ग़रीब की सारी बिसात होगी। जब ऐसे ग़रीबों की सहानुभूति हमारे साथ है, तो मुझे सत्य के विजय में कोई सन्देह नहीं मालूम होता। हमारे यहाँ क्यों इतने फ़क़ीर दिखाई देते हैं? या तो इसलिए कि समाज में इन्हें कोई काम नहीं मिलता या दरिद्रता से पैदा हुई बीमारियों के कारण यह अब इस योग्य ही नहीं रह गये, कि कुछ काम करें। या भिक्षावृत्ति ने इनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं छोड़ी। स्वराज्य के सिवा इन ग़रीबों का अब उद्धार कौन कर सकता है। देखिये वह गा रहा है—

'वतन की देखिये तक़दीर कब बदलती है।'

इस पीड़ित हृदय में कितना उत्सर्ग है! क्या अब भी कोई सन्देह कर सकता है, कि हम किसकी आवाज़ हैं? (पैसा ऊपर उठाकर) आप में कौन इस रत्न को खरीद सकता है?

गोदावरी के मन में जिज्ञासा हुई, क्या यह वही पैसा तो नहीं है, जो रात मैंने उसे दिया था? क्या उसने सचमुच रात को कुछ नहीं खाया?

उसने जाकर समीप से पैसे को देखा, जो मेज़ पर रख दिया गया था। उसका हृदय धक् से हो गया। यह वही घिसा हुआ पैसा था।

उस अन्धे की दशा का, उसके त्याग का स्मरण करके गोदावरी अनुरक्त हो उठी। काँपते हुए स्वर में बोली—मुझे आप यह पैसा दे दीजिये, मैं पाँच रुपए दूँगी।

सभापति ने कहा—एक बहन इस पैसे के दाम पाँच रुपए दे रही हैं।

दूसरी आवाज़ आई, दस रुपए।

तीसरी आवाज़ आई, बीस रुपए।

गोदावरी ने इस अन्तिम व्यक्ति की ओर देखा। उसके मुख पर आत्माभिमान झलक रहा था, मानो कह रहा हो, कि यहाँ कौन है, जो मेरी बराबरी कर सके। गोदावरी के मन में स्पर्धा का भाव जाग उठा। चाहे कुछ हो जाय, इसके हाथ में यह पैसा न जाय। समझता है, इसने बीस रुपए क्या कह दिये, सारे संसार को मोल ले लिया।

गोदावरी ने कहा—चालीस रुपए।

उस पुरुष ने तुरन्त कहा—पचास रुपए।

हज़ारों आँखें गोदावरी की ओर उठ गईं। मानो कह रही हों, अब आप ही हमारी लाजर खिये।

गोदावरी ने उस आदमी की ओर देखकर धमकी से मिले हुए स्वर में कहा—सौ रुपए।

धनी आदमी ने भी तुरन्त कहा—एक सौ बीस रुपए।

लोगों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। समझ गये इसके हाथ विजय रही। निराश आँखों से गोदावरी की ओर ताकने लगे; मगर ज्योंही गोदावरी के मुँह से निकला, डेढ़ सौ, कि चारों तरफ़ से तालियाँ पड़ने लगीं, मानो किसी दंगल के दर्शक अपने पहलवान की विजय पर मतवाले हो गये हों।

उस आदमी ने फिर कहा—पौने दो सौ।

गोदावरी बोली—दो सौ।

फिर चारों तरफ़ से तालियाँ पड़ीं। प्रतिद्वंदी ने अब मैदान से हट जाने ही में अपनी कुशल समझी।

गोदावरी विजय के गर्व पर नम्रता का पर्दा डाले हुए खड़ी थी और हज़ारों शुभ कामनाएँ उस पर फूलों की तरह बरस रही थीं।

(४)

जब लोगों को मालूम हुआ, कि यह देवी मिस्टर सेठ की बीवी हैं, तो उन्हें एक ईर्ष्यामय आनंद के साथ उस पर दया भी आई।

मिस्टर सेठ अभी फ्लावर शो में ही थे, कि एक पुलीस के अफ़सर ने उन्हें यह घातक संवाद सुनाया। मिस्टर सेठ सकते में आ गये, मानो सारी देह शून्य पड़ गई हो। फिर दोनो मुट्ठियाँ बाँध लीं। दाँत पीसे, ओठ चबाये और उसी वक्त घर चले। उनकी मोटर-साइकिल कभी इतनी तेज़ न चली थी।

घर में क़दम रखते ही उन्होंने चिनगारियाँ-भरी आँखों से देखते हुए कहा—क्या तुम मेरे मुँह में कालिख पुतवाना चाहती हो?

गोदावरी ने शांत भाव से कहा—कुछ मुँह से भी तो कहो या गालियाँ ही दिये जाओगे? तुम्हारे मुँह में कालिख लगेगी, तो क्या मेरे मुँह में न लगेगी। तुम्हारी जड़ खुदेगी, तो मेरे लिए दूसरा कौन-सा सहारा है।

मिस्टर सेठ—सारे शहर में तूफ़ान मचा हुआ है, तुमने मेरे रुपए दिये क्यों?

गोदावरी ने उसी शान्त भाव से कहा—इसलिए कि मैं उसे अपना ही रुपया समझती हूँ।

मिस्टर सेठ दाँत किटकिटाकर बोले—हरगिज़ नहीं, तुम्हें मेरा रुपया ख़र्च करने का कोई हक़ नहीं है।

गोदावरी—बिलकुल ग़लत, तुम्हारे रुपए ख़र्च करने का तुम्हें जितना अख्तियार है, उतना ही मुझको भी है। हाँ, जब तलाक़ का क़ानून पास करा लोगे और तलाक़ दे दोगे, तब न रहेगा।

मिस्टर सेठ ने अपना हैट इतने ज़ोर से मेज़ पर फेंका, कि वह लुढ़कता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा और बोले—मुझे तुम्हारी अक्ल पर अफसोस आता है। जानती हो तुम्हारी इस उद्दंडता का क्या नतीजा होगा? मुझसे जवाब तलब हो जायगा। बतलाओ, क्या जवाब दूँगा। जब यह ज़ाहिर है, कि कांग्रेस सरकार से दुश्मनी कर रही है तो कांग्रेस की मदद करना सरकार के साथ दुश्मनी करना है।

'तुमने तो नहीं की कांग्रेस की मदद।'

'तुमने तो की।'

'इसकी सज़ा मुझे मिलेगी या तुम्हें? अगर मैं चोरी करूँ, तो क्या तुम जेल जाओगे?'

'चोरी की बात और है, यह बात और है।'

'तो क्या कांग्रेस की मदद करना चोरी या डाके से भी बुरा है?'

'हाँ, सरकारी नौकर के लिए चोरी या डाके से भी कहीं बुरा है।'

'मैंने यह नहीं समझा था।'

'अगर तुमने यह नहीं समझा था, तो तुम्हारी ही बुद्धि का भ्रम था। रोज़ अख़बारों में देखती हो, फिर भी मुझसे पूछती हो। एक कांग्रेस का आदमी प्लेट-फार्म पर बोलने खड़ा होता है, तो बीसियों सादे कपड़ेवाले पुलीस अफ़सर उसकी रिपोर्ट लेने बैठते हैं। कांग्रेस के सर्गनाओं के पीछे कई-कई मुख़बिर लगा दिये जाते हैं, जिनका काम यही है, कि उन पर कड़ी निगाह रखें। चोरों के साथ तो इतनी सख्ती कभी नहीं की जाती। इसीलिए हज़ारों चोरियाँ और डाके और

खून रोज़ होते रहते हैं। किसी का कुछ पता नहीं चलता ; न पुलीस इसकी परवा करती है। मगर पुलीस को जिस मामले में राजनीति की गंध भी आ जाती है, फिर देखो, पुलीस की मुस्तैदी। इंस्पेक्टर जनरल से लेकर कांस्टेबिल तक एड़ियों तक का ज़ोर लगाते हैं। सरकार को चोरों से भय नहीं। चोर सरकार पर चोट नहीं करता। कांग्रेस सरकार के अख्तियार पर हमला करती है ; इसलिए सरकार भी अपनी रक्षा के लिए अपने अख्तियारों से काम लेती है। यह तो प्रकृति का नियम है।'

मिस्टर सेठ आज दफ़्तर चले, तो उनके क़दम पीछे रहे जाते थे। न-जाने आज वहाँ क्या हाल हो! रोज़ की तरह दफ़्तर में पहुँचकर उन्होंने चपरासियों को डाँटा नहीं ; क्लर्कों पर रोब नहीं जमाया। चुपके से जाकर कुर्सी पर बैठ गये। ऐसा मालूम होता था, कोई तलवार सिर पर लटक रही है। साहब की मोटर की आवाज़ सुनते ही उनके प्राण सूख गये। रोज़ वह अपने कमरे में बैठे रहते थे। जब साहब आकर बैठ जाते थे, तब आध घंटे के बाद मिसलें लेकर पहुँचते थे। आज वह बरामदे में खड़े थे, साहब उतरे, तो झुककर उन्होंने सलाम किया ; मगर साहब ने मुँह फेर लिया।

लेकिन वह हिम्मत नहीं हारे, आगे बढ़कर पर्दा हटा दिया, साहब कमरे में गये, तो सेठ साहब ने पंखा खोल दिया ; मगर जान सूखी जाती थी, कि देखें कब सिर पर तलवार गिरती है। साहब ज्योंही कुर्सी पर बैठे, सेठ ने लपककर सिगार-केस और दियासलाई मेज़ पर रख दी।

एकाएक उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो आसमान फट गया हो। साहब गरज रहे थे, तुम दग़ाबाज़ आदमी है!

सेठ ने इस तरह साहब की तरफ़ देखा, जैसे उनका मतलब नहीं समझे।

साहब ने फिर गरजकर कहा—तुम दग़ाबाज़ आदमी है।

मिस्टर सेठ का खून गर्म हो उठा, बोले—मेरा तो ख्याल है, कि मुझसे बड़ा राजभक्त इस देश में न होगा।

साहब—तुम नमकहराम आदमी है।

मिस्टर सेठ के चेहरे पर सुर्ख़ी आई—आप व्यर्थ ही अपनी ज़बान ख़राब कर रहे हैं।

साहब—तुम शैतान आदमी है।

मिस्टर सेठ की आँखों में सुर्ख़ी आई—आप मेरी बेइज्ज़ती कर रहे हैं। ऐसी बातें सुनने की मुझे आदत नहीं है।

साहब—चुप रहो, यू ब्लैडी। तुमको सरकार पाँच सौ रुपए इसलिए नहीं देता, कि तुम अपने वाइफ़ के हाथ से कांग्रेस का चन्दा दिलवाये। तुमको इसलिए सरकार रुपया नहीं देता।

मिस्टर सेठ को अब अपनी सफ़ाई देने का अवसर मिला। बोले—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि मेरी वाइफ़ ने सरासर मेरी मर्जी के खिलाफ रुपए दिये हैं। मैं तो उस वक्त फ्लावर शो देखने गया था, जहाँ मैंने मिस फ्रांक का गुलदस्ता पाँच रुपए में लिया। वहाँ से लौटा, तो मुझे यह ख़बर मिली।

साहब—ओ! तुम हमको बेवकूफ बनाता है?

यह बात अग्नि-शिखा की भाँति ज्योंही साहब के मस्तिष्क में घुसी, उनके मिजाज़ का पारा उबाल के दर्जे तक पहुँच गया। किसी हिन्दुस्तानी की इतनी मजाल कि उन्हें बेवकूफ़ बनाये। वह, जो हिन्दुस्तान के बादशाह हैं, जिनके पास बड़े-बड़े तालुक़ेदार सलाम करने आते

हैं, जिनके नौकरों को बड़े-बड़े रईस नज़राना देते हैं। उन्हीं को कोई बेवकूफ़ बनाये! उसके लिए यह असह्य था। रूल उठाकर दौड़ा।

लेकिन मिस्टर सेठ भी मज़बूत आदमी थे। यों वह हर तरह की खुशामद किया करते थे; लेकिन यह अपमान स्वीकार न कर सके। उन्होंने रूल को तो हाथ पर लिया और एक डग आगे बढ़कर ऐसा घूँसा साहब के मुँह पर रसीद किया, कि साहब की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह इस मुष्टि-प्रहार के लिए तैयार न थे। उन्हें कई बार इसका अनुभव हो चुका था, कि नेटिव बहुत ही शान्त, दब्बू और गमखोर होता है। विशेषकर साहबों के सामने तो उसकी ज़बान तक नहीं खुलती। कुर्सी पर बैठकर नाक का खून पोंछने लगा। फिर मिस्टर सेठ से उलझने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी; मगर दिल में सोच रहा था, इसे कैसे नीचा दिखाऊँ।

मिस्टर सेठ भी अपने कमरे में आकर इस परिस्थिति पर विचार करने लगे। उन्हें बिलकुल खेद न था; बल्कि वह अपने साहस पर प्रसन्न थे। इसकी बदमाशी तो देखो, कि मुझ पर रूल चला दिया। जितना दबता था, उतना ही दबाये जाता था। मेम यारों को लिये घूमा करती हैं, उससे बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। मुझसे शेर बन गया। अब दौड़ेगा कमिश्नर के पास। मुझे बरख़ास्त कराये बग़ैर न छोड़ेगा। यह सब कुछ गोदावरी के कारण हो रहा है। बेइज़्ज़ती तो हो ही गई। अब रोटियों को भी मुहताज होना पड़ा! मुझसे तो कोई पूछेगा भी नहीं, बरख़ास्तगी का परवाना आ जायगा। अपील कहाँ होगी? सेक्रेटरी हैं हिन्दुस्तानी; मगर अँगरेज़ों से भी ज्यादा अँगरेज़। होम मेम्बर भी हिन्दुस्तानी हैं; मगर अँगरेज़ों के गुलाम। गोदावरी के चन्दे का

हाल सुनते ही उसे जूड़ी चढ़ आयेगी। न्याय की किसी से आशा नहीं। अब यहाँ से निकल जाने में ही कुशल है।

उन्होंने तुरन्त एक इस्तीफ़ा लिखा और साहब के पास भेज दिया। साहब ने उस पर लिख दिया, 'बरख़ास्त'।

(४)

दोपहर को जब मिस्टर सेठ मुँह लटकाये हुए घर पहुँचे, तो गोदावरी ने पूछा—आज जल्दी कैसे आ गये ?

मिस्टर सेठ दहकती हुई आँखों से देखकर बोले—जिस बात पर लगी थीं, वह हो गई। अब रोओ, सिर पर हाथ रखके !

गोदावरी—बात क्या हुई, कुछ कहो भी तो ?

सेठ—बात क्या हुई, उसने आँखें दिखाई। मैंने चाँटा जमाया और इस्तीफ़ा देकर चला आया।

गोदावरी—इस्तीफा देने की क्या जल्दी थी ?

सेठ—और क्या सिर के बाल नुचवाता ? तुम्हारा यही हाल है, तो आज नहीं कल अलग होना ही पड़ता।

गोदावरी—खैर जो हुआ अच्छा ही हुआ। आज से तुम भी कांग्रेस में शरीक हो जाओ।

सेठ ने ओठ चबाकर कहा—लजाओगी तो नहीं, ऊपर से घाव पर नमक छिड़कती हो।

गोदावरी—लजाऊँ क्यों, मैं तो खुश हूँ, तुम्हारी बेड़ियाँ कट गईं।

सेठ—आखिर कुछ सोचा है, काम कैसे चलेगा ?

गोदावरी—सब सोच लिया है, मैं चलाकर दिखा दूँगी। हाँ, मैं जो कुछ कहूँ, वह तुम किये जाना। अब तक मैं तुम्हारे इशारों पर

चलती थी, अब से तुम मेरे इशारे पर चलना। मैं तुमसे किसी बात की शिकायत न करती थी ; तुम जो कुछ खिलाते थे, खाती थी, जो कुछ पहनाते थे, पहनती थी। महल में रखते, महल में रहती। झोंपड़ी में रखते, झोंपड़ी में रहती। उसी तरह तुम भी रहना। जो काम करने को कहूँ, वह करना। फिर देखूँ, कैसे काम नहीं चलता। बड़प्पन सूट-बूट और ठाठ-बाट में नहीं है। जिसकी आत्मा पवित्र हो, वही ऊँचा है। आज तक तुम मेरे पति थे, आज से मैं तुम्हारी पति हूँ।

सेठजी उसकी ओर स्नेह की आँखों से देखकर हँस पड़े।

लांछन

अगर संसार में कोई ऐसा प्राणी होता, जिसकी आँखें लोगों के हृदयों के भीतर घुस सकतीं, तो ऐसे बहुत कम स्त्री या पुरुष होंगे, जो उसके सामने सीधी आँखें करके ताक सकते। महिला-आश्रम की जुगनूबाई के विषय में लोगों की धारणा कुछ ऐसी ही हो गई थी। वह बेपढ़ी-लिखी, ग़रीब, बूढ़ी औरत थी, देखने में बड़ी सरल, बड़ी हँसमुख; लेकिन जैसे किसी चतुर प्रूफ़-रीडर की निगाह ग़लतियों ही पर जा पड़ती है, उसी तरह उसकी आँखें भी बुराइयों ही पर पहुँच जाती थीं। शहर में ऐसी कोई महिला न थी, जिसके विषय में दो-चार लुकी-छिपी बातें उसे न मालूम हों। उसका ठिगना स्थूल शरीर, सिर के खिचड़ी बाल, गोल मुँह, फूले-फूले गाल, छोटी-छोटी आँखें उसके स्वभाव की प्रखरता और तेज़ी पर परदा-सा डाले रहती थीं; लेकिन जब वह किसी की कुत्सा करने लगती, तो उसकी आकृति कठोर हो

जाती, आँखें फैल जातीं और कंठ-स्वर कर्कश हो जाता। उसकी चाल में बिल्लियों का-सा संयम था, दबे पाँव धीरे-धीरे चलती; पर शिकार की आहट पाते ही, जस्त मारने को तैयार हो जाती थी। उसका काम था, महिला-आश्रम में महिलाओं की सेवा-टहल करना; पर महिलाएँ उसकी सूरत से काँपती थीं। उसका ऐसा आतंक था, कि ज्यों ही वह कमरे में क़दम रखती, ओठों पर खेलती हुई हँसी, जैसे रो पड़ती थी। चहकनेवाली आवाज़ें, जैसे बुझ जाती थीं, मानो उसके मुख पर लोगों को अपने पिछले रहस्य अंकित नज़र आते हों। पिछले रहस्य! कौन है, जो अपने अतीत को किसी भयंकर जंतु के समान कठघरों में बन्द करके न रखना चाहता हो। धनियों को चोरों के भय से निद्रा नहीं आती; मानियों को उसी भाँति मान की रक्षा करनी पड़ती है। वह जंतु, जो पहले कीट के समान अल्पाकार रहा होगा, दिनों के साथ दीर्घ और सबल होता जाता है, यहाँ तक कि हम उसकी याद ही से काँप उठते हैं। और अपने ही कारनामों की बात होती, तो अधिकांश देवियाँ जुगनू को दुत्कारतीं; पर यहाँ तो मैके और ससुराल, ननिहाल और ददियाल, फुफियाल और मौसियाल, चारो ओर की रक्षा करनी थी और जिस क़िले में इतने द्वार हों, उसकी रक्षा कौन कर सकता है। वहाँ तो हमला करनेवाले के सामने मस्तक झुकाने में ही कुशल है। जुगनू के दिल में हज़ारों मुरदे गड़े पड़े थे और वह ज़रूरत पड़ने पर उन्हें उखाड़ दिया करती थी। जहाँ किसी महिला ने दून की ली या शान दिखाई, वहीं जुगनू की त्योरियाँ बदलीं। उसकी एक कड़ी निगाह अच्छे-अच्छों को दहला देती थी; मगर यह बात न थी, कि स्त्रियाँ उससे घृणा करती हों। नहीं, सभी बड़े चाव से उससे मिलतीं और उसका आदर-सत्कार करतीं। अपने पड़ोसियों की निन्दा सनातन

से मनुष्य के लिए मनोरंजन का विषय रही है और जुगनू के पास इसका काफ़ी सामान था।

(२)

नगर में इंदुमती-महिला-पाठशाला नाम का एक लड़कियों का हाई स्कूल था। हाल में मिस खुरशेद उसकी हेड मिस्ट्रेस होकर आई थीं। शहर में महिलाओं का दूसरा क्लब न था। मिस खुरशेद एक दिन आश्रम में आईं। ऐसी ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाई हुई आश्रम में कोई देवी न थीं। उनकी बड़ी आव-भगत हुई। पहले ही दिन मालूम हो गया, कि मिस खुरशेद के आने से आश्रम में एक नये जीवन का संचार होगा। कुछ इस तरह दिल खोलकर हरेक से मिलीं, कुछ ऐसी दिलचस्प बातें कीं कि सभी देवियाँ मुग्ध हो गईं। गाने में भी चतुर थीं। व्याख्यान भी खूब देती थीं और अभिनय-कला में तो उन्होंने लंदन में नाम कमा लिया था। ऐसी सर्वगुण-सम्पन्ना देवी का आना आश्रम का सौभाग्य था। गुलाबी गोरा रंग, कोमल गात, मद भरी आँखें, नये फ़ैशन के कटे हुए केश, एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ, मादकता की इससे अच्छी प्रतिमा न बन सकती थी।

चलते समय मिस खुरशेद ने मिसेज़ टंडन को, जो आश्रम की प्रधाना थीं, एकान्त में बुलाकर पूछा—वह बुढ़िया कौन है?

जुगनू कई बार कमरे में आकर मिस खुरशेद को अन्वेषण की आँखों से देख चुकी थी, मानो कोई शह सवार किसी नई घोड़ी को देख रहा हो।

मिसेज़ टंडन ने मुसकिराकर कहा—यहाँ ऊपर का काम करने के लिए नौकर है। कोई काम हो तो बुलाऊँ? मिस खुरशेद ने धन्यवाद देकर कहा—जी नहीं, कोई विशेष काम नहीं है। मुझे चालबाज़ मालूम

होती है। यह भी देख रही हूँ, कि यहाँ की वह सेविका नहीं, स्वामिनी है। मिसेज़ टंडन तो जुगनू से जली बैठी ही थीं। इनके वैधव्य को लांछित करने के लिए, वह इन्हें सदा-सोहागिन कहा करती थी। मिस ख़ुरशेद से उसकी जितनी बुराई हो सकी, वह की, और उससे सचेत रहने का आदेश दिया।

मिस ख़ुरशेद ने गंभीर होकर कहा—तब तो भयंकर स्त्री है। जभी सब देवियाँ इससे काँपती हैं। आप इसे निकाल क्यों नहीं देतीं। ऐसी चुड़ैल को एक भी दिन न रखना चाहिये।

मि० टंडन ने अपनी मजबूरी जताई—निकाल कैसे दूँ। ज़िंदा रहना मुश्किल हो जाय। हमारा भाग्य उसकी मुट्ठी में है। आपको दो-चार दिन में उसके जौहर खुलेंगे। मैं तो डरती हूँ, कहीं आप भी उसके पंजे में न फँस जायँ। उसके सामने भूलकर भी किसी पुरुष से बातें न कीजियेगा। इसके गोयंदे न-जाने कहाँ-कहाँ लगे हुए हैं। नौकरों से मिलकर भेद यह ले, डाकियों से मिलकर चिट्ठियाँ यह देखे, लड़कों को फुसलाकर घर का हाल यह पूछे। इस राँड को तो ख़ुफिया पुलीस में जाना चाहिये था। यहाँ न जाने क्यों आ मरी।

मिस ख़ुरशेद चिंतित हो गईं, मानो इस समस्या को हल करने की फ़िक्र में हों। एक क्षण बाद बोलीं—अच्छा मैं इसे ठीक करूँगी, अगर निकाल न दूँ, तो कहना।

मि० टंडन—निकाल देने ही से क्या होगा। उसकी ज़बान तो न बन्द होगी। तब तो वह और भी निडर होकर कीचड़ फेंकेगी।

मिस ख़ुरशेद ने निश्चित स्वर में कहा—मैं उसकी ज़बान भी बन्द कर दूँगी बहन। आप देख लीजियेगा। टके की औरत यहाँ बादशाहत कर रही है। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती।

वह चली गई, तो मिसेज़ टंडन ने जुगनू को बुलाकर कहा—इस नई मिस साहब को देखा। यहाँ प्रिंसिपल हैं।

जुगनू ने द्वेष से भरे हुए स्वर में कहा—आप देखें। मैं ऐसी सैकड़ों छोकरियाँ देख चुकी हूँ। आँखों का पानी जैसे मर गया हो।

मि० टंडन—धीरे से बोलो। तुम्हें कच्चा ही खा जायँगी। उनसे डरती रहना। कह गई हैं, मैं इसे ठीक करके छोड़ूँगी। मैंने सोचा, तुम्हें चेता दूँ। ऐसा न हो, उसके सामने कुछ ऐसी-वैसी बातें कह बैठो।

जुगनू ने मानो तलवार खींचकर कहा—मुझे चेताने का काम नहीं, उन्हें चेता दीजियेगा। यहाँ का आना न बन्द कर दूँ, तो अपने बाप की नहीं। वह घूमकर दुनिया देख आई हैं, तो यहाँ घर बैठे दुनिया देख चुकी हूँ।

मिसेज़ टंडन ने पीठ ठोंकी—मैंने समझा दिया भाई, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

जुगनू—आप चुपचाप देखती जाइये। कैसा तिगनी का नाच नचाती हूँ। इसने अब तक ब्याह क्यों नहीं किया? उमिर तो तीस के लगभग होगी।

मिसेज़ टंडन ने रद्दा जमाया—कहती हैं, मैं शादी करना ही नहीं चाहती। किसी पुरुष के हाथ क्यों अपनी आज़ादी बेचूँ।

जुगनू ने आँखें नचाकर कहा—कोई पूछता ही न होगा। ऐसी बहुत-सी क्वाँरियाँ देख चुकी हूँ। सत्तर चूहे खाकर, बिल्ली चली हज को।

और कई लेडियाँ आ गईं, बात का सिलसिला बन्द हो गया।

(३)

दूसरे दिन सबेरे जुगनू मिस खुरशेद के बँगले पर पहुँची। मिस

ख़ुरशेद हवा खाने गई हुई थीं। ख़ानसामा ने पूछा—कहाँ से आती हो?

जुगनू—यहीं रहती हूँ बेटा। मेम साहब कहाँ से आई हैं, तुम तो इनके पुराने नौकर होगे?

ख़ान०—नागपूर से आई हैं। मेरा घर भी वहीं है। दस साल से इनके साथ हूँ।

जुगनू—किसी ऊँचे ख़ानदान की होंगी। वह तो रंग-ढंग से ही मालूम होता है।

ख़ान०—ख़ानदान तो कुछ ऐसा ऊँचा नहीं है; हाँ, तक़दीर की अच्छी हैं। इनकी मा अभी तक मिशन में ३०) पाती हैं। यह पढ़ने में तेज़ थीं, वजीफ़ा मिल गया, विलायत चली गईं, बस तक़दीर खुल गई। अब तो अपनी माँ को बुलानेवाली हैं; लेकिन वह बुढ़िया शायद ही आये। यह गिरजे-विरजे नहीं जातीं, इससे दोनो में पटती नहीं।

जुगनू—मिजाज़ की तेज़ मालूम होती हैं।

ख़ान०—नहीं, यों तो बहुत नेक हैं; हाँ, गिरजे नहीं जातीं। तुम क्या नौकरी की तलाश में हो? करना चाहो, तो कर लो, एक आया रखना चाहती हैं।

जुगनू—नहीं बेटा, मैं अब क्या नौकरी करूँगी। इस बंगले में पहले जो मेम साहब रहती थीं, वह मुझ पर बड़ी निगाह रखती थीं। मैंने समझा चलूँ, नई मेम साहब को आसिरबाद दे आऊँ।

खानसामा—यह आसिरबाद लेनेवाली मेम साहब नहीं है। ऐसों से बहुत चिढ़ती हैं। कोई मँगता आया और उसे डाँट बताई। कहती हैं, बिना काम किये किसी को ज़िंदा रहने का हक़ नहीं है। भला चाहती हो, तो चुपके से राह लो।

जुगनू—तो यह कहो, इनका कोई धरम-करम नहीं है। फिर भला ग़रीबों पर क्यों दया करने लगीं।

जुगनू को अपनी दीवार खड़ी करने के लिए काफ़ी सामान मिल गया—नीचे ख़ान्दान की है। माँ से नहीं पटती, धर्म से विमुख है। पहले धावे में इतनी सफलता कुछ कम न थी। चलते-चलते ख़ानसामा से इतना और पूछा—इनके साहब क्या करते हैं। ख़ानसामा ने मुसकिराकर कहा—इनकी तो अभी शादी ही नहीं हुई। साहब कहाँ से होंगे।

जुगनू ने बनावटी आश्चर्य से कहा—अरे! अब तक ब्याह ही नहीं हुआ! हमारे यहाँ तो दुनिया हँसने लगे।

ख़ान०—अपना-अपना रिवाज़ है। इनके यहाँ तो कितनी ही औरतें उम्र-भर ब्याह नहीं करतीं।

जुगनू ने मार्मिक-भाव से कहा—ऐसी क्वाँरियों को मैं भी बहुत देख चुकी। हमारी बिरादरी में कोई इस तना रहे, तो थुड़ी-थुड़ी हो जाय। मुदा इनके यहाँ जो जी में आवे करो, कोई नहीं पूछता।

इतने में मिस खुरशेद आ पहुँचीं। गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। मिस साहब साड़ी के ऊपर ओवर कोट पहने हुए थीं। एक हाथ में छतरी थी, दूसरे में छोटे कुत्ते की जंजीर। प्रभात की शीतल वायु में व्यायाम ने कपोलों को ताज़ा और सुर्ख़ कर दिया था। जुगनू ने झुककर सलाम किया; पर उन्होंने उसे देखकर भी न देखा। अन्दर जाते ही ख़ानसामा को बुलाकर पूछा—यह औरत क्या करने आई है?

ख़ानसामा ने जूते का फ़ीता खोलते हुए कहा—भिखारिन है हुज़ूर! पर औरत समझदार है। मैंने कहा यहाँ नौकरी करेगी, तो राज़ी नहीं हुई। पूछने लगी, इनके साहब क्या करते हैं। जब मैंने बता

दिया, तो इसे बड़ा ताज्जुब हुआ और होना ही चाहिये। हिन्दुओं में तो दुध-मुँहे बालकों तक का विवाह हो जाता है।

मिस ख़ुरशेद ने जाँच की—और क्या कहती थी ?

'और तो कोई बात नहीं हुज़ूर।'

'अच्छा उसे मेरे पास भेज दो।'

(४)

जुगनू ने ज्यों ही कमरे में क़दम रक्खा, मिस ख़ुरशेद ने कुरसी से उठकर स्वागत किया—आइये मांजी। मैं ज़रा सैर करने चली गई थी। आपके आश्रम में तो सब कुशल है। जुगनू एक कुरसी का तकिया पकड़ कर खड़ी-खड़ी बोली—सब कुशल है मिस साहब। मैंने कहा आपको आसीरबाद दे आऊँ। मैं आपकी चेरी हूँ। जब कोई काम पड़े, मुझे याद कीजियेगा। यहाँ अकेले तो हजूर को अच्छा न लगता होगा।

मिस०—मुझे अपने स्कूल की लड़कियों के साथ बड़ा आनन्द मिलता है, वे सब मेरी ही लड़कियाँ हैं।

जुगनू ने मातृ-भाव से सिर हिलाकर कहा—यह ठीक है मिस साहब; पर अपना अपना ही है। दूसरा अपना हो जाय, तो अपनों के लिए कोई क्यों रोये।

सहसा एक सुन्दर सजीला युवक रेशमी सूट धारण किये जूते चर-मर करता हुआ अन्दर आया। मिस ख़ुरशेद ने इस तरह दौड़कर प्रेम से उसका अभिवादन किया, मानो जामे में फूली न समाती हों। जुगनू उसे देखकर कोने में दबक गई।

मिस ख़ुरशेद ने युवक से गले मिलकर कहा—प्यारे, मैं कबसे तुम्हारी राह देख रही हूँ। (जुगनू से) माँजी, आप जायँ, फिर कभी आना।

यह हमारे परम-मित्र विलियम किंग हैं। हम और यह बहुत दिनो तक साथ-साथ पढ़े हैं।

जुगनू चुपके से निकलकर बाहर आई। ख़ानसामा खड़ा था। पूछा—यह लौंडा कौन है।

ख़ानसामा ने सिर हिलाया—मैंने इसे आज ही देखा है। शायद अब क्वाँरेपन से जी ऊबा। अच्छा तरहदार जवान है।

जुगनू—दोनो इस तरह टूटकर गले मिले हैं, कि मैं तो लाज के मारे गड़ गई। ऐसी चूमा-चाटी तो जोरू-ख़सम में भी नहीं होती। दोनो लिपट गये। लौंडा तो मुझे देखकर कुछ झिझकता था; पर तुम्हारी मिस साहब तो जैसे मतवाली हो गई थीं।

ख़ानसामा ने मानो अमंगल के आभास से कहा—मुझे तो कुछ बेढब मामला नज़र आता है।

जुगनू तो यहाँ से सीधे मिसेज़ टंडन के घर पहुँची। इधर मिस ख़ुरशेद और युवक में बातें होने लगीं।

मि० ख़ुरशेद ने क़हक़हा मारकर कहा—तुमने अपना पार्ट ख़ूब खेला लीला, बुढ़िया सचमुच चौंधिया गई!

लीला—मैं तो डर रही थी, कि कहीं बुढ़िया भाँप न जाय।

मि० ख़ुरशेद—मुझे विश्वास था, वह आज ज़रूर आयेगी। मैंने दूर ही से उसे बरामदे में देखा और तुम्हें सूचना दी। आज आश्रम में बड़े मज़े रहेंगे। जी चाहता है, महिलाओं की कनफुसकियाँ सुनूँ। देख लेना सभी उसकी बातों पर विश्वास करेंगी।

लीला—तुम भी तो जान-बूझकर दलदल में पाँव रख रही हो।

मि० ख़ुरशेद—मुझे अभिनय में मज़ा आता है बहन। ज़रा दिल्लगी रहेगी। बुढ़िया ने बड़ा जुल्म कर रक्खा है। ज़रा उसे सबक़ देना चाहती

हूँ। कल तुम इसी वक्त इसी ठाट से फिर आ जाना। बुढ़िया कल फिर आयेगी। उसके पेट में पानी न हज़म होगा। नहीं ऐसा क्यों। जिस वक्त वह आयेगी, मैं तुम्हें ख़बर दूँगी। बस तुम छैला बनी हुई पहुँच जाना।

(५)

आश्रम में उस दिन जुगनू को दम मारने की फ़ुर्सत न मिली। उसने सारा वृत्तांत मिसेज़ टंडन से कहा। मिसेज़ टंडन दौड़ी हुई आश्रम पहुँची और अन्य महिलाओं को ख़बर सुनाई। जुगनू उसकी तस्दीक़ करने के लिए बुलाई गई। जो महिला आती, वह जुगनू के मुँह से यह कथा सुनती। हरेक रिहर्सल में कुछ-कुछ रंग और चढ़ जाता। यहाँ तक कि दोपहर होते-होते सारे शहर के सभ्य-समाज में यह ख़बर गूँज उठी।

एक देवी ने पूछा—यह युवक है कौन ?

मि० टंडन—सुना तो उनके साथ का पढ़ा हुआ है। दोनो में पहले से कुछ बातचीत रही होगी। वही तो मैं कहती थी कि इतनी उम्र हो गई, यह क्वाँरी कैसे बैठी है। अब क़लई खुली।

जुगनू—और कुछ हो या न हो, जवान तो बाँका है।

टंडन—यह हमारी विद्वान् बहनों का हाल है।

जुगनू—मैं तो उनकी सूरत देखते ही ताड़ गई थी। धूप में बाल नहीं सुफ़ेद किये हैं।

टंडन—कल फिर जाना।

जुगनू—कल नहीं, मैं आज रात ही को जाऊँगी। लेकिन रात को जाने के लिए कोई बहाना ज़रूरी था। मिसेज़ टंडन ने आश्रम के लिए एक किताब मँगवा भेजी। रात के नौ बजे जुगनू मि० ख़ुरशेद के बँगले

पर जा पहुँची। संयोग से लीलावती उस वक्त मौजूद थी। बोली—यह बुढ़िया तो बेतरह पीछे पड़ गई।

ख़ुरशेद—मैंने तो तुमसे कहा था, उसके पेट में पानी न पचेगा। तुम जाकर रूप भर आओ। तब तक इसे मैं बातों में लगाती हूँ। शराबियों की तरह अंट-संट बकना शुरू करना। मुझे भगा ले जाने का प्रस्ताव भी करना। बस यों बन जाना, जैसे अपने होश में नहीं हो।

लीला मिशन में डाक्टर थी। उसका बँगला भी पास ही था। वह चली गई, तो मि० ख़ुरशेद ने जुगनू को बुलाया।

जुगनू ने एक पुरज़ा उसको देकर कहा—मिसेज़ टंडन ने यह किताब माँगी है। मुझे आने में देर हो गई। मैं इस वक्त आपको कष्ट न देती; पर सवेरे ही वह मुझसे माँगेंगी। हजारों रुपए महीने की आमदनी है मिस साहब; मगर एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ती हैं। इनके द्वार पर भिखारी को भीख तक नहीं मिलती।

मि० ख़ुरशेद ने पुरजा देखकर कहा—इस वक्त तो यह किताब नहीं मिल सकती, सुबह ले जाना। तुमसे कुछ बातें करनी हैं। बैठो मैं अभी आती हूँ।

वह परदा उठाकर पीछे के कमरे में चली गई और वहाँ से कोई पंद्रह मिनट में एक सुन्दर रेशमी साड़ी पहने, इत्र में बसी हुई, मुँह पर पाउडर लगाये निकली। जुगनू ने उसे आँखें फाड़कर देखा। ओह! यह श्रृंगार! शायद इस समय वह लौंडा आनेवाला होगा। तभी यह तैयारियाँ हैं। नहीं, सोने के समय क्वाँरियों के बनाव-सँवार की क्या ज़रूरत। जुगनू की नीति में स्त्रियों के श्रृंगार का केवल एक उद्देश्य था, पति को लुभाना। इसलिए सोहागिनों के सिवा, श्रृंगार और सभी के लिए वर्जित था। अभी ख़ुरशेद कुरसी पर बैठने भी न पाई

थी, कि जूतों का चरमर सुनाई दिया और एक क्षण में विलियम किंग ने कमरे में क़दम रखा। उसकी आँखें चढ़ी हुई मालूम होती थीं और कपड़ों से शराब की गंध आ रही थी। उसने बेधड़क मिस ख़ुरशेद को छाती से लगा लिया और बार-बार उसके कपोलों का चुम्बन लेने लगा।

मिस ख़ुरशेद ने अपने को उसके कर-पाश से छुड़ाने की चेष्टा करके कहा—चलो हटो, शराब पीकर आये हो।

किंग ने उसे और चिमटाकर कहा—आज तुम्हें भी पिलाऊँगा प्रिये! तुमको पीना होगा। फिर हम दोनों लिपटकर सोयेंगे। नशे में प्रेम कितना सजीव हो जाता है, इसकी परीक्षा कर लो।

मिस ख़ुरशेद ने इस तरह जुगनू की उपस्थिति का उसे संकेत किया कि जुगनू की नज़र पड़ जाय। पर किंग नशे में मस्त था। जुगनू की तरफ़ देखा ही नहीं।

मिस ख़ुरशेद ने रोष के साथ अपने को अलग करके कहा—तुम इस वक्त आपे में नहीं हो। इतने उतावले क्यों हुए जाते हो। क्या मैं कहीं भागी जा रही हूँ।

किंग—इतने दिनों चोरों की तरह आया हूँ, आज से मैं खुले-खजाने आऊँगा।

ख़ुरशेद—तुम तो पागल हो रहे हो। देखते नहीं हो, कमरे में कौन बैठा हुआ है।

किंग ने हकबकाकर जुगनू की तरफ़ देखा और झिझककर बोला—यह बुढ़िया यहाँ कब आई। तुम यहाँ क्यों आई बुड्ढी! शैतान की बच्ची! यहाँ भेद लेने आती है। हमको बदनाम करना चाहती है। मैं तेरा गला घोट दूँगा। ठहर, भागती कहाँ है। तुझे जिंदा न छोड़ूँगा!

जुगनू बिल्ली की तरह कमरे से निकली और सिर पर पाँव रखकर भागी। उधर कमरे से क़हक़हे उठ-उठकर छत को हिलाने लगे।

जुगनू उसी वक़्त मिसेज़ टण्डन के घर पहुँची। उसके पेट में बुलबुले उठ रहे थे; पर मिसेज़ टण्डन सो गई थीं। वहाँ से निराश होकर उसने कई दूसरे घरों की कुंडी खटखटाई। पर कोई द्वार न खुला और दुखिया को सारी रात इस तरह काटनी पड़ी, मानो कोई रोता हुआ बच्चा गोद में हो। प्रातःकाल वह आश्रम में जा कूदी। कोई आध घंटे में मिसेज़ टंडन भी आईं। उन्हें देखकर उसने मुँह फेर लिया।

मि० टंडन ने पूछा—रात क्या तुम मेरे घर गई थीं? इस वक़्त मुझसे महराज ने कहा।

जुगनू ने विरक्त भाव से कहा—प्यासा ही तो कुएँ के पास जाता है। कुआँ थोड़े ही प्यासे के पास आता है। मुझे आग में झोंककर आप दूर हट गईं। भगवान् ने रक्षा की, नहीं कल जान हो गई थी।

मि० टंडन ने उत्सुकता से कहा—क्यों हुआ क्या, कुछ कहो तो। मुझे तुमने जगा क्यों न लिया। तुम तो जानती हो, मेरी आदत सबेरे सो जाने की है।

'महराज ने घर में घुसने ही न दिया। जगा कैसे लेती। आपको इतना तो सोचना चाहिये था, कि वह वहाँ गई है, तो आती होगी। घड़ी भर बाद ही सोतीं, तो क्या बिगड़ जाता। पर आपको किसी की क्या परवाह!'

'तो क्या हुआ, मिस ख़ुरशेद मारने दौड़ीं?'

'वह नहीं मारने दौड़ीं, उनका वह ख़सम है, वह मारने दौड़ा। लाल आँखें निकाले आया और मुझसे कहा—निकल जा। जब तक मैं निकलूँ-निकलूँ, तब तक हंटर खींचकर दौड़ ही तो पड़ा। मैं सिर

पर पाँव रखकर न भागती, तो चमड़ी उधेड़ डालता। और वह राँड बैठी तमाशा देखती रही। दोनो में पहले से सधी-बदी थी। ऐसी कुलटाओं का मुँह देखना पाप है। बेस्या भी इतनी निर्लज्ज न होगी।

ज़रा देर में और देवियाँ आ पहुँचीं। यह वृत्तान्त सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रही थीं। जुगनू की कैंची अविश्रान्त रूप से चलती रही। महिलाओं को इस वृत्तान्त में इतना आनन्द आ रहा था, कि कुछ न पूछो। एक-एक बात को खोद-खोदकर पूछती थीं। घर के काम-धन्धे भूल गये, खाने-पीने की भी सुधि न रही। और एक बार सुनकर ही उनकी तृप्ति न होती थी। बार-बार वही कथा नये आनन्द से सुनती थीं।

मिसेज़ टंडन ने अन्त में कहा—इस आश्रम में ऐसी महिलाओं को लाना अनुचित है। आप लोग इस प्रश्न पर विचार करें।

मिसेज़ पांड्या ने समर्थन किया—हम आश्रम को आदर्श से गिराना नहीं चाहते। मैं तो कहती हूँ, ऐसी औरत किसी संस्था की प्रिंसिपल बनने के योग्य नहीं।

मिसेज़ बाँगड़ा ने फ़रमाया—जुगनूबाई ने ठीक कहा था। ऐसी औरत का मुँह देखना भी पाप है। उससे साफ़ कह देना चाहिये, आप यहाँ तशरीफ़ न लायें।

अभी यह खिचड़ी पक ही रही थी, कि आश्रम के सामने एक मोटर आकर रुकी। महिलाओं ने सिर उठा-उठाकर देखा, गाड़ी में मिस ख़ुरशेद और विलियम किंग बैठे हुए थे।

जुगनू ने मुँह फैलाकर हाथ से इशारा किया—वही लौंडा है! महिलाओं का सम्पूर्ण समूह; चिक के सामने आने के लिए विकल हो गया।

मिस ख़ुरशेद ने मोटर से उतरकर हुड बन्द कर दिया और आश्रम

के द्वार की ओर चलीं। महिलाएँ भाग-भागकर अपनी-अपनी जगह आ बैठीं।

मिस ख़ुरशेद ने कमरे में क़दम रखा। किसी ने स्वागत न किया। मिस ख़ुरशेद ने जुगनू की ओर निस्संकोच आँखों से देखकर मुसकिराते हुए कहा—कहिये बाईजी, रात आपको चोट तो नहीं आई।

जुगनू ने बहुतेरी दीदा-दिलेर स्त्रियाँ देखी थीं; पर इस ढिठाई ने उसे चकित कर दिया। चोर हाथ में चोरी का माल लिए, साह को ललकार रहा था।

जुगनू ने ऐंठकर कहा—जी न भरा हो, तो अब पिटवा दो। सामने ही तो हैं।

ख़ुरशेद—वह इस वक़्त तुमसे अपना अपराध क्षमा कराने आये हैं। रात वह नशे में थे।

जुगनू ने मिसेज़ टंडन की ओर देखकर कहा—और आप भी तो कुछ कम नशे में नहीं थीं।

ख़ुरशेद ने व्यंग समझकर कहा—मैंने आज-तक कभी नहीं पी, मुझ पर झूठा इलजाम मत लगाओ।

जुगनू ने लाठी मारी—शराब से भी बड़ी नशे की चीज़ है कोई, वह उसी का नशा होगा। उन महाशय को परदे में क्यों ढँक दिया। देवियाँ भी तो उनकी सूरत देखतीं।

मिस ख़ुरशेद ने शरारत की—सूरत तो उनकी लाख दो लाख में एक है।

मिसेज़ टंडन ने आशंकित होकर कहा—नहीं उन्हें यहाँ लाने की ज़रूरत नहीं। आश्रम को हम बदनाम नहीं करना चाहते।

मिस ख़ुरशेद ने आग्रह किया—मुआमले को साफ़ करने के लिए

उनका आप लोगों के सामने आना ज़रूरी है। एक तरफ़ी फ़ैसला आप क्यों करती हैं।

मिसेज़ टंडन ने टालने के लिए कहा—यहाँ कोई मुक़दमा थोड़े ही पेश है।

मिस ख़ुरशेद—वाह! मेरी इज़्ज़त में बट्टा लगा जा रहा है और आप कहती हैं—कोई मुक़दमा नहीं है। मिस्टर किंग आगेयें और आपको उनका बयान सुनना होगा।

मिसेज़ टंडन को छोड़कर और सभी महिलाएँ किंग को देखने के लिए उत्सुक थीं। किसी ने विरोध न किया।

ख़ुरशेद ने द्वार पर आकर ऊँची आवाज़ से कहा—तुम ज़रा यहाँ चले आओ।

हूड खुला और मिस लीलावती रेशमी साड़ी पहने मुसकिराती हुई निकल आईं।

आश्रम में सन्नाटा छा गया। देवियाँ विस्मित आँखों से लीलावती को देखने लगीं।

जुगनू ने आँखें चमकाकर कहा—उन्हें कहाँ छिपा दिया आपने?

ख़ुरशेद—छू मन्तर से उड़ गये। जाकर गाड़ी देख लो।

जुगनू लपककर गाड़ी के पास गई और ख़ूब देख-भालकर मुँह लटकाये हुए लौटी।

मिस ख़ुरशेद ने पूछा—क्या हुआ, मिला कोई?

जुगनू—मैं यह तिरिया-चरित्तर क्या जानूँ। (लीलावती को गौर से देखकर) और मरदों को साड़ी पहनाकर आँखों में धूल झोंक रही हो। यही तो हैं, वह रातवाले साहब।

ख़ुरशेद—खूब पहचानती हो?

जुगनू—हाँ-हाँ, क्या अंधी हूँ।

मिसेज़ टंडन—क्या पागलों-सी बातें करती हो जुगनू, यह तो डाक्टर लीलावती हैं।

जुगनू—(उँगली चमकाकर) चलिये-चलिये, लीलावती हैं। साड़ी पहनकर औरत बनते लाज नहीं आती! तुम रात को नहीं इनके घर थे?

लीलावती ने विनोद-भाव से कहा—मैं कब इनकार कर रही हूँ। इस वक़्त लीलावती हूँ। रात को विलियम किंग बन जाती हूँ। इसमें बात ही क्या है।

देवियों को अब यथार्थ की लालिमा दिखाई दी। चारों तरफ़ क़हकहे पड़ने लगे। कोई तालियाँ बजाती थी, कोई डाक्टर लीलावती की गरदन से लिपटी जाती थी, कोई मिस ख़ुरशेद की पीठ पर थपकियाँ देती थी। कई मिनट तक हू-हा मचा रहा। जुगनू का मुँह उस लालिमा में बिलकुल ज़रा-सा निकल आया। ज़बान बंद हो गई। ऐसा चरका उसने कभी न खाया था। इतनी ज़लील कभी न हुई थी।

मिसेज़ मेहरा ने डाँट बताई—अब बोलो दाई, लगी मुँह में कालिख कि नहीं?

मिसेज़ बाँगड़ा—इसी तरह यह सबको बदनाम करती है।

लीलावती—आप लोग भी तो जो यह कहती है, उस पर विश्वास कर लेती हैं।

इस हरबोंग में जुगनू को किसी ने जाते न देखा। अपने सिर पर यह तूफ़ान उठते देखकर, उसे चुपके से सरक जाने ही में अपनी कुशल मालूम हुई। पीछे के द्वार से निकली और गलियों-गलियों भागी।

मिस ख़ुरशेद ने कहा—ज़रा उससे पूछो, मेरे पीछे क्यों पड़ गई थी !

मिसेज़ टंडन ने पुकारा ; पर जुगनू कहाँ ! तलाश होने लगी। जुगनू ग़ायब !

उस दिन से शहर में फिर किसी ने जुगनू की सूरत नहीं देखी। आश्रम के इतिहास में यह मुआमला आज भी उल्लेख और मनोरंजन का विषय बना हुआ है।

ठाकुर का कुआँ

—॥॥—

जोखू ने लोटा मुँह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आई। गंगी से बोला—यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा हुआ पानी पिलाये देती है!

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। कुआँ दूर था; बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लाई, तो उसमें बू बिलकुल न थी; आज पानी में बदबू कैसी? लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। ज़रूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा; मगर दूसरा पानी आये कहाँ से?

ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा? दूर ही से लोग डाट बतायेंगे। साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है; परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा? चौथा कुआँ गाँव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप

पड़ा रहा, फिर बोला—अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बन्द करके पी लूँ।

गंगी ने पानी न दिया। ख़राब पानी पीने से बीमारी बढ़ जायगी—इतना जानती थी ; परन्तु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी ख़राबी जाती रहती है। बोली—यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुए से मैं दूसरा पानी लाये देती हूँ।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा—दूसरा पानी कहाँ से लायेगी ?

'ठाकुर और साहू के दो कुए तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे ?'

'हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मन-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है ! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता। कँधा देना, तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुए से पानी भरने देंगे ?'

इन शब्दों में कड़वा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती ; किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

(२)

रात के नौ बजे थे। थके-माँदे मज़दूर तो सो चुके थे। ठाकुर के दरवाज़े पर दस-पाँच बे-फ़िक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो अब ज़माना रहा है न मौका। क़ानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक ख़ास मुक़द्दमे में रिश्वत दे दी और साफ़ निकल गये। कितनी अक़्लमंदी से एक मार्के के मुक़दमे की नक़ल ले आये। नाज़िर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नक़ल

नहीं मिल सकती। कोई पचास माँगता, कोई सौ। यहाँ बे-पैसे-कौड़ी नक़ल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिये।

इसी समय गंगी कुए से पानी लेने पहुँची।

कुप्पी की धुँधली रोशनी कुए पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौक़े का इन्तज़ार करने लगी। इस कुए का पानी गाँव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ़ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मज़बूरियों पर चोटें करने लगा—हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं! यहाँ तो जितने हैं एक-से-एक छटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फ़रेब ये करें, झूठे मुकद्दमे ये करें। अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को मारकर खा गया। इन्हीं पंडितजी के घर में तो बारहों मास जूआ होता है। यहां साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे! हाँ, मुँह में हमसे ऊँचे हैं। हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे। कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रिस भरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है; परन्तु घमंड यह कि हम ऊँचे हैं।

किसी के कुए पर आने की आहट हुई। गंगी की छाती धकधक करने लगी। कहीं देख ले, तो गजब हो जाय! एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा लिया और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अँधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर। बेचारे महँगू को इतना मारा कि महीनों थूकता रहा। इसी लिए तो कि उसने बेगार न दी थी। ये लोग कहते हैं कि ऊँचे हैं!

कूए पर दो स्त्रियाँ पानी भरने आई थीं। इनमें बातें हो रही थीं।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हाँ, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडिया ही तो हैं!'

'लौंडियाँ नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं? दस-पाँच रुपए भी छीन-झपटकर ले ही लेती हो। और लौंडियाँ कैसी होती हैं?'

'मत जलाओ, दीदी! छिन भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम तो किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता। यहाँ काम करते-करते मर जाओ; पर किसी का मुँह ही नहीं सीधा होता।'

दोनो पानी भरकर चली गईं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कूए की जगत के पास आई। बे-फ़िक्रे चले गये थे। ठाकुर भी दरवाज़ा बन्द करके अन्दर आँगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख का साँस लिया। किसी तरह मैदान तो साफ़ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी ज़माने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानता के साथ और समझ-बूझकर न गया होगा। गंगी दबे पाँव कुए की जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें-बायें खोज की दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के क़िले में सूराख़ करने लग रहा

पियक्कड़ों की गालियाँ खाय ? बहुत सम्भव है, कि वे हाथा-पाई कर बैठें। उनके हाथों पिटना किसे मंजूर हो सकता था ? फिर पुलीसवाले भी बैठे तमाशा न देखेंगे। उन्हें और भी भड़काते रहेंगे। पुलीस की शह पाकर ये नशे के बन्दे जो कुछ न कर डालें, वह थोड़ा ! ईंट का जवाब पत्थर से दे नहीं सकते, और इस समुदाय पर विनती का कोई असर नहीं !

एक मेम्बर ने कहा—मेरे विचार में तो इन ज़ातों में पंचायतों को फिर सँभालना चाहिये। इधर हमारी लापरवाही से उनकी पंचायतें निर्जीव हो गई हैं। इसके सिवा मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता।

सभापति ने कहा—हाँ, यह एक उपाय है। मैं इसे नोट किये लेता हूँ ; पर धरना देना ज़रूरी है।

दूसरे महाशय बोले—उनके घरों पर जाकर समझाया जाय, तो अच्छा असर होगा।

सभापति ने अपनी चिकनी खोपड़ी सहलाते हुए कहा—यह भी अच्छा उपाय है ; मगर धरने को हम लोग त्याग नहीं सकते।

फिर सन्नाटा हो गया।

पिछली क़तार में एक देवी भी मौन बैठी हुई थीं। जब कोई मेम्बर बोलता, वह एक नज़र उसकी तरफ़ डालकर फिर सिर झुका लेती थीं। यही कांग्रेस की लेडी मेम्बर थीं। उनके पति महाशय जी० पी० सकसेना कांग्रेस के अच्छे काम करनेवालों में थे। उनका देहान्त हुए तीन साल हो गये थे। मिसेज़ सकसेना ने इधर एक साल से कांग्रेस के कामों में भाग लेना शुरू कर दिया था और कांग्रेस-कमेटी ने उन्हें अपना मेम्बर चुन लिया था। वह शरीफ़ घरानों में जा-जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं। जब कभी कांग्रेस के प्लेट-फार्म

पर बोलने खड़ी होतीं, तो उनका जोश देखकर ऐसा मालूम होता था, आकाश में उड़ जाना चाहती हैं। कुन्दन का-सा रंग लाल हो जाता था, बड़ी-बड़ी करुण आँखें—जिनमें जल भरा हुआ मालूम होता था—चमकने लगती थीं। बड़ी खुशमिज़ाज, और उसके साथ बला की निर्भीक स्त्री थीं। दबी हुई चिंगारी थीं, जो हवा पाकर दहक उठती है। उनके मामूली शब्दों में इतना आकर्षण कहाँ से आ जाता था, कह नहीं सकते। कमेटी के कई जवान मेम्बर, जो पहले कांग्रेस में बहुत कम आते थे, अब बिला नाग़ा आने लगे थे। मिसेज़ सकसेना कोई भी प्रस्ताव करें, उसका अनुमोदन करनेवालों की कमी न थी। उनकी सादगी, उनका उत्साह, उनकी विनय, उनकी मृदुवाणी कांग्रेस पर उनका सिक्का जमाये देती थी। हर आदमी उनकी ख़ातिर सम्मान की सीमा तक करता था; पर उनकी स्वाभाविक नम्रता उन्हें अपने दैवी साधनों से पूरा-पूरा फ़ायदा न उठाने देती थी। वह जब कमरे में आतीं, लोग खड़े हो जाते थे; पर वह पिछली सफ़ से आगे न बढ़ती थीं।

मिसेज़ सकसेना ने प्रधान से पूछा—शराब की दूकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं?

सबकी आँखें उनकी ओर उठ गईं। इस प्रश्न का आशय सब समझ गये।

प्रधान ने कातर स्वर में कहा—महात्माजी ने तो यह काम औरतों ही को सुपुर्द करने पर जोर दिया है; पर...। मिसेज़ सकसेना ने उन्हें अपना वाक्य पूरा न करने दिया। बोलीं—तो फिर मुझे इस काम पर भेज दीजिये।

लोगों ने कुतूहल की आँखों से मिसेज़ सकसेना को देखा। यह

सुकुमारी, जिसके कोमल अंगों में शायद हवा भी चुभती हो, गंदी गलियों में, ताड़ी और शराब की दुर्गंध भरी दूकानों के सामने जाने और नशे से पागल आदमियों की कलुषित आँखों और बाहों का सामना करने को कैसे तैयार हो गई!

एक महाशय ने अपने समीप के आदमी के कान में कहा—बला की निडर औरत है!

उन महाशय ने जले हुए शब्दों में उत्तर दिया—हम लोगों को काँटों में घसीटना चाहती है, और कुछ नहीं। यह बेचारी क्या पिकेटिंग करेगी। दूकान के सामने खड़ा तक तो हुआ न जायगा।

प्रधान ने सिर झुकाकर कहा—मैं आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ, लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको ख़बर नहीं नशेबाज़ लोग कितने मुँहफट होते हैं। विनय तो वह जानते ही नहीं!

मिसेज़ सकसेना ने व्यंग्य भाव से कहा—तो क्या आपका विचार है, कि कोई ऐसा ज़माना भी आयेगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायँगे? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आख़िर महात्माजी ने कुछ समझकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है? मैं नहीं कह सकती, कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी; पर इस कर्त्तव्य को टालने से काम न चलेगा।

प्रधान ने शशोपंज में पड़कर कहा—मैं तो आपको इस काम के लिए घसीटना उचित नहीं समझता, आगे आपको अख्तियार है।

मिसेज़ सकसेना ने जैसे विजय का आलिंगन करते हुए कहा—मैं आपके पास फ़रियाद लेकर न आऊँगी, कि मुझे फ़लाँ आदमी ने मारा, या गाली दी। इतना जानती हूँ, कि अगर मैं सफल हो गई,

तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी, जो सोलहों आने अपने हाथ में न ले लें।

इस पर एक नौजवान मेम्बर ने कहा—मैं सभापतिजी से निवेदन करूँगा, कि मिसेज़ सकसेना को यह काम देकर आप हिंसा का सामान कर रहे हैं। इससे यह कहीं अच्छा है, कि आप मुझे यह काम सौंपें।

मिसेज़ सकसेना ने गर्म होकर कहा—आपके हाथों हिंसा होने का डर और भी ज्यादा है।

इस नौजवान मेम्बर का नाम था जयराम। एक बार एक कड़ा व्याख्यान देने के लिए जेल हो आये थे; पर उस वक्त उनके सिर गृहस्थी का भार न था। क़ानून पढ़ते थे। अब उनका विवाह हो गया था, दो-तीन बच्चे भी हो गये थे, दशा बदल गई थी। दिल में वही जोश, वही तड़प, वही दर्द था; पर अपनी हालत से मजबूर थे।

मिसेज़ सकसेना की ओर नम्र आग्रह से देखकर बोले—आप मेरी ख़ातिर से इस गन्दे काम में हाथ न डालें। मुझे एक सप्ताह का अवसर दीजिये। अगर इस बीच में कहीं दंगा हो जाय, तो आपको मुझे निकाल देने का अधिकार होगा।

मिसेज़ सकसेना जयराम को ख़ूब जानती थीं। उन्हें मालूम था, कि यह त्याग और साहस का पुतला है और अब तक सिर्फ़ परिस्थितियों के कारण पीछे दबका हुआ था। इसके साथ ही वह यह भी जानती थीं, कि इसमें वह धैर्य और बर्दाश्त नहीं है, जो पिकेटिंग के लिए लाज़मी है। जेल में उसने दारोगा को अपशब्द कहने पर चाँटा लगाया था और उसकी सज़ा तीन महीने और बढ़ गई थी। बोलीं—आपके सिर गृहस्थी का भार है। मैं घमण्ड नहीं करती; पर जितने धैर्य से मैं यह काम कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते।

घर तबाह करके छोड़ देती है। मुदा इतनी उमिर पीते कट गई, तो अब मरते दम क्या छोड़ें ? उसके साथी ने समर्थन किया—पक्की बात कहते हो चौधरी ! जब इतनी उमिर पीते कट गई, तो अब मरते दम क्या छोड़ें !

जयराम ने कहा—वाह ! चौधरी, यही तो उमिर है छोड़ने की। जवानी तो दीवानी होती है, उस वक्त सब कुछ मुआफ है।

चौधरी ने तो कोई जवाब न दिया ; लेकिन उसके साथी ने जो काला, मोटा, बड़ी-बड़ी मुँछोंवाला आदमी था, सरल आपत्ति के भाव से कहा—अगर पीना बुरा है, तो अँगरेज़ क्यों पीते हैं ?

जयराम वकील था, उससे बहस करना भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। बोला—यह तुमने बहुत अच्छा सवाल पूछा भाई। अँगरेजों के बाप-दादा अभी डेढ़-दो सौ साल पहले लुटेरे थे। हमारे-तुम्हारे बाप-दादा ऋषि-मुनि थे। लुटेरों की सन्तान पिये, तो पीने दो। उनके पास न कोई धर्म है, न नीति ; लेकिन ऋषियों की सन्तान उनकी नक़ल क्यों करे ? हम और तुम उन महात्माओं की सन्तान हैं, जिन्होंने दुनिया को धर्म सिखाया, जिन्होंने दुनिया को आदमी बनाया। हम अपना धर्म छोड़ बैठे, उसी का फल है, कि आज हम गुलाम हैं ; लेकिन अब हमने गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का फैसला कर लिया है और...

एकाएक थानेदार और चार-पाँच कांस्टेबल आ खड़े हुए।

थानेदार ने चौधरी से पूछा—यह लोग तुमको धमका रहे हैं ?

चौधरी ने खड़े होकर कहा—नहीं हुजूर, यह तो हमें समझा रहे हैं। कैसे प्रेम से समझा रहे हैं, कि वाह !

थानेदार ने जयराम से कहा—अगर यहाँ फ़िसाद हो जाय, तो आप ज़िम्मेदार होंगे ?

जयराम—मैं उस वक्त तक ज़िम्मेदार हूँ, जब तक आप न रहें।

'आपका मतलब है, कि मैं फ़िसाद कराने आया हूँ।'

'मैं यह नहीं कहता ; लेकिन आप आये हैं, तो अँगरेजी साम्राज्य की अतुल शक्ति का परिचय ज़रूर ही दीजियेगा। जनता में उत्तेजना फैलेगी। तब आप पिल पड़ेंगे और दस-बीस आदमियों को मार गिरायेंगे। यही सब जगह होता है, और यहाँ भी होगा।'

सब इन्सपेक्टर ने ओंठ चबाकर कहा—मैं आपसे कहता हूँ, यहाँ से चले जाइये, वरना मुझे जाबते की कार्रवाई करनी पड़ेगी।

जयराम ने अविचल भाव से कहा—और मैं आपसे कहता हूँ, कि आप मुझे अपना काम करने दीजिये। मेरे बहुत से भाई यहाँ जमा हैं और मुझे उनसे बात-चीत करने का उतना ही हक़ है, जितना आपको।

इस वक्त तक सैकड़ों दर्शक जमा हो गये थे। दारोग़ा ने अफ़सरों से पूछे बग़ैर और कोई कार्रवाई करना उचित न समझा। अकड़ते हुए दूकान पर गये और कुरसी पर पाँव रखकर बोले—ये लोग तो माननेवाले नहीं हैं!

दूकानदार ने गिड़गिड़ाकर कहा—हजूर, मेरी तो बधिया बैठ जायगी!

दारोगा—दो-चार गुण्डे बुलाकर भगा क्यों नहीं देते? मैं कुछ न बोलूँगा। हाँ, ज़रा एक बोतल अच्छी-सी भेज देना। कल न-जाने क्या भेज दिया, कुछ मज़ा ही नहीं आया।

थानेदार चला गया, तो चौधरी ने अपने साथी से कहा—देखा कल्लू, थानेदार कितना बिगड़ रहा था। सरकार चाहती है, कि हम लोग ख़ूब शराब पियें और कोई हमें समझाने न पाये। शराब का पैसा भी तो सरकार ही में जाता है?

कल्लू ने दार्शनिक भाव से कहा—हरएक बहाने से पैसा खींचते हैं सब।

चौधरी—तो फिर क्या सलाह है? है तो बुरी चीज़?

कल्लू—बहुत बुरी चीज़ है भैया, महात्माजी का हुक्म है, तो छोड़ ही देना चाहिये।

चौधरी—अच्छा तो यह लो। आज से अगर पिये तो दोगला!

यह कहते हुए चौधरी ने बोतल ज़मीन पर पटक दी। आधी बोतल शराब ज़मीन पर बहकर सूख गई।

जयराम को शायद ज़िन्दगी में कभी इतनी खुशी न हुई थी। ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाकर उछल पड़े।

उसी वक्त दोनो ताड़ी पीनेवालों ने भी 'महात्माजी की जय' पुकारी और अपनी हाँड़ी जमीन पर पटक दी। एक स्वयंसेवक ने लपककर फूलों की माला ली और चारों आदमियों के गले में डाल दी।

(३)

सड़क की पटरी पर कई नशेबाज़ बैठे इन चारों आदमियों की तरफ़ उस दुर्बल भक्ति से ताक रहे थे, जो पुरुषार्थहीन मनुष्यों का लक्षण है। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति न था, जो अँगरेज़ों की भाँति मदिरा या ताड़ी को ज़िन्दगी के लिए अनिवार्य समझता हो और उसके बग़ैर ज़िन्दगी की कल्पना भी न कर सके। सभी लोग नशे को दूषित समझते थे, केवल दुर्बलेंद्रिय होने के कारण नित्य आकर पी जाते थे। चौधरी-जैसे घाघ पियक्कड़ को बोतल पटकते देखकर उनकी आँखें खुल गईं।

एक मरियल, दाढ़ीवाले आदमी ने आकर चौधरी की पीठ ठोंकी। चौधरी ने उसे पीछे ढकेलकर कहा—पीठ क्या ठोंकते हो जी, जाकर अपनी बोतल पटक दो।

दाढ़ीवाले ने कहा—आज और पी लेने दो चौधरी ! अल्लाह जानता है, कल से इधर भूलकर भी न आऊँगा।

चौधरी—जितनी बची हो, उसके पैसे हमसे ले लो। घर जाकर बच्चों को मिठाई खिला देना।

दाढ़ीवाले ने जाकर बोतल पटक दी और बोला—लो, तुम भी क्या कहोगे ? अब तो हुए खुश !

चौधरी—अब तो न पियोगे कभी ?

दाढ़ीवाले ने कहा—अगर तुम न पियोगे, तो मैं भी न पिऊँगा। जिस दिन तुमने पी, उसी दिन मैंने फिर शुरू कर दी।

चौधरी की तत्परता ने दुराग्रह की जड़ें हिला दी थीं। बाहर अभी पाँच-छः आदमी और थे। वे सचेत निर्लज्जता से बैठे हुए अभी तक पीते जाते थे। जयराम ने उनके सामने जाकर कहा—भाइयो, आपके पाँच भाइयों ने अभी आपके सामने अपनी-अपनी बोतल पटक दीं। क्या आप उन लोगों को बाज़ी जीत ले जाने देंगे ?

एक ठिगने, काले आदमी ने, जो किसी अँगरेज़ का खान-सामा मालूम होता था, लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—हम पीते हैं, तो तुमसे मतलब ! तुमसे भीख माँगने तो नहीं जाते ?

जयराम ने समझ लिया, अब बाज़ी मार ली। गुमराह आदमी जब विवाद करने पर उतर आये, तो समझ लो, वह रास्ते पर आ जायगा। चुप्पा ऐब वह चिकना घड़ा है, जिस पर किसी बात का असर नहीं होता।

जयराम ने कहा—अगर मैं अपने घर में आग लगाऊँ, तो उसे देखकर क्या आप मेरा हाथ न पकड़ लेंगे ? मुझे तो इसमें रत्ती भर

सन्देह नहीं है, कि आप मेरा हाथ ही न पकड़ लेंगे ; बल्कि मुझे यहाँ से ज़बरदस्ती खींच ले जायँगे ।

चौधरी ने खानसामा की तरफ़ मुग्ध आँखों से देखा, मानो कह रहा है—इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है ? और बोला—जमादार, अब इसी बात पर बोतल पटक दो ।

ख़ानसामा ने जैसे काट खाने के लिए दाँत तेज़ कर लिये और बोला—बोतल क्यों पटक दूँ, पैसे नहीं दिये हैं ?

चौधरी परास्त हो गया । जयराम से बोला—इन्हें छोड़िये बाबूजी, यह लोग इस तरह माननेवाले असामी नहीं हैं । आप इनके सामने जान भी दे दें, तो भी शराब न छोड़ेंगे । हाँ, पुलीस की एक घुड़की पा जायँ, तो फिर कभी इधर भूलकर भी न आयें ।

ख़ानसामा ने चौधरी की ओर तिरस्कार के भाव से देखा, जैसे कह रहा हो—क्या तुम समझते हो, कि मैं ही मनुष्य हूँ, यह सब पशु हैं ? फिर बोला—तुमसे क्या मतलब है जी, क्यों बीच में कूद पड़ते हो ? मैं तो बाबूजी से बातें कर रहा हूँ । तुम कौन होते हो बीच में बोलने-वाले ? मैं तुम्हारी तरह नहीं हूँ, कि आज बोतल पटककर वाह-वाह कराऊँ, कल फिर मुँह में कालिख लगाऊँ, या घर पर मँगवाकर पिऊँ ? यहाँ जब छोड़ेंगे, तो सच्चे दिल से छोड़ेंगे । फिर कोई लाख रुपए भी दे, तो आँख उठाकर न देखें ।

जयराम—मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा है ।

चौधरी ने ख़ानसामा की ओर कटाक्ष करके कहा—क्या तुम समझते हो, मैं कल फिर पीछे आऊँगा ?

ख़ानसामा ने उद्दण्डता से कहा—हाँ-हाँ, कहता हूँ, तुम आओगे और बद कर आओगे । कहो पक्के काग़ज़ पर लिख दूँ !

चौधरी—अच्छा भाई, तुम बड़े धर्मात्मा हो, मैं पापी सही। तुम छोड़ोगे, तो जिन्दगी भर के लिए छोड़ोगे, मैं आज छोड़कर कल फिर पीने लगूँगा, यही सही। मेरी एक बात गाँठ बाँध लो, तुम उस बखत छोड़ोगे, जब जिन्दगी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। इसके पहले तुम नहीं छोड़ सकते।

ख़ानसामा—तुम मेरे दिल का हाल क्या जानते हो?

चौधरी—जानता हूँ, तुम्हारे-जैसे सैकड़ों आदमी को भुगत चुका हूँ।

ख़ानसामा—तो तुमने ऐसे-वैसे बेशर्मों को देखा होगा। हयादार आदमियों को न देखा होगा।

यह कहते हुए उसने जाकर अपनी बोतल पटक दी और बोला—अब अगर तुम इस दूकान पर देखना, तो मुँह में कालिख लगा देना।

चारों तरफ तालियाँ बजने लगीं। मर्द ऐसे होते हैं!

ठीकेदार ने दूकान से नीचे उतरकर कहा—तुम लोग अपनी-अपनी दूकान पर क्यों नहीं जाते जी! मैं तो किसी की दूकान पर नहीं जाता!

एक दर्शक ने कहा—खड़े हैं, तो तुमसे मतलब? सड़क तुम्हारी नहीं है। तुम ग़रीबों को लूटे जाओ। किसी के बाल-बच्चे भूखों मरें तुम्हारा क्या बिगड़ता है। (दूसरे शराबियों से) क्या यारो, अब भी पीते जाओगे! जानते हो, यह किसका हुक्म है? अरे कुछ भी तो शर्म हो!

जयराम ने दर्शकों से कहा—आप लोग यहाँ भीड़ न लगायें और न किसी को भला-बुरा कहें।

मगर दर्शकों का समूह बढ़ता जाता था। अभी तक चार-पाँच

आदमी बेग़म बैठे हुए कुल्हड़-पर-कुल्हड़ चढ़ा रहे थे। एक मनचले आदमी ने जाकर उस बोतल को उठा लिया, जो उनके बीच में रखी हुई थी और उसे पटकना चाहता था, कि चारों शराबी उठ खड़े हुए और उसे पीटने लगे। जयराम और उनके स्वयंसेवक तुरत वहाँ पहुँच गये और उसे बचाने की चेष्टा करने लगे, कि चारो उसे छोड़कर जयराम की तरफ़ लपके। दर्शकों ने देखा, कि जयराम पर मार पड़ा चाहती है, तो कई आदमी झल्लाकर उन चारों शराबियों पर टूट पड़े। लातें घूँसे और डण्डे चलने लगे। जयराम को इसका कुछ अवसर न मिलता था, कि किसी को समझाये। बस, दोनो हाथ फैलाये उन चारो के वारों से बच रहा था। वह चारो भी आपे से बाहर होकर दर्शकों पर डण्डे चला रहे थे। जयराम दोनो तरफ से मार खाता था। शराबियों के वार भी उसी पर पड़ते थे, तमाशाइयों के वार भी उसी पर पड़ते थे; पर वह उनके बीच से हटता न था। अगर वह इस वक्त अपनी जान बचाकर हट जाता, तो शराबियों की खैरियत न थी। इसका दोष कांग्रेस पर पड़ता। वह कांग्रेस को इस आक्षेप से बचाने के लिए अपने प्राण देने पर तैयार था। मिसेज़ सकसेना को अपने ऊपर हँसने का मौक़ा वह न देना चाहता था।

आख़िर उसके सिर पर एक डण्डा इतने ज़ोर से पड़ा, कि वह सिर पकड़कर बैठ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं फिर उसे होश न रहा।

(४)

जयराम सारी रात बेहोश पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह को जब उसे होश आया, तो सारी देह में पीड़ा हो रही थी और कमज़ोरी इतनी थी, कि रह-रहकर जी डूबा जाता था। एकाएक सिरहाने की

तरफ़ आँख उठ गई, तो मिसेज़ सकसेना बैठी नज़र आई। उन्हें देखते ही वह स्वयं-सेवकों के मना करने पर भी उठ बैठा। दर्द और कमज़ोरी दोनो जैसे ग़ायब हो गई। एक-एक अंग में स्फूर्ति दौड़ गई।

मिसेज़ सकसेना ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—आपको बड़ी चोट आई। इसका सारा दोष मुझ पर है।

जयराम ने भक्तिमय कृतज्ञता के भाव से देखकर कहा—चोट तो ऐसी ज्यादा न थी, इन लोगों ने बरबस पट्टी-सट्टी बाँधकर ज़ख्मी बना दिया।

मिसेज़ सकसेना ने ग्लानित होकर कहा—मुझे आपको न जाने देना चाहिए था।

जयराम—आपका वहाँ जाना उचित न था। मैं आपसे अब भी यही अनुरोध करूँगा, कि उस तरफ़ न जाइयेगा।

मिसेज़ सकसेना ने जैसे उन बाधाओं पर हँसकर कहा—वाह! मुझे आज से वहाँ पिकेट करने की आज्ञा मिल गई है।

'आप मेरी इतनी विनय मान जाइयेगा। शोहदों के लिए आवाज़ कसना बिलकुल मामूली बात है।'

'मैं आवाज़ों की परवाह नहीं करती।'

'तो फिर मैं भी आपके साथ चलूँगा।'

'आप! इस हालत में!'—मिसेज़ सकसेना ने आश्चर्य से कहा।

'मैं बिलकुल अच्छा हूँ, सच!'

'यह नहीं हो सकता। जब तक डाक्टर यह न कह देगा, कि अब आप वहाँ जाने के योग्य हैं, मैं आपको न जाने दूँगी। किसी तरह नहीं।'

'तो मैं भी आपको न जाने दूँगा।'

मिसेज़ सकसेना ने मृदु-व्यंग के साथ कहा—आप भी अन्य पुरुषों

ही की भाँति स्वार्थ के पुतले हैं। सदा यश खुद लूटना चाहते हैं, औरतों को कोई मौक़ा नहीं देना चाहते। कम से कम यह तो देख लीजिये, कि मैं भी कुछ कर सकती हूँ या नहीं?

जयराम ने व्यथित कंठ से कहा—जैसी आपकी इच्छा!

(५)

तीसरे पहर मिसेज़ सकसेना चार स्वयंसेवकों के साथ बेगमगंज चलीं। जयराम आँखें बंद किये चारपाई पर पड़ा था। शोर सुनकर चौंका और अपनी स्त्री से पूछा—यह कैसा शोर है?

स्त्री ने खिड़की से झाँककर देखा और बोली—वही औरत, जो कल आई थी, झंडा लिये कई आदमियों के साथ जा रही है। इसे शर्म भी नहीं आती?

जयराम ने उसके चेहरे पर क्षमा की दृष्टि डाली और विचार में डूब गया। फिर वह उठ खड़ा हुआ और बोला—मैं भी वहीं जाता हूँ।

स्त्री ने उसका हाथ पकड़कर कहा—अभी कल मार खाकर आये हो, आज फिर जाने की सूझी!

जयराम ने हाथ छुड़ाकर कहा—तुम उसे मार कहती हो, मैं उसे उपहार समझता हूँ।

स्त्री ने उसका रास्ता रोक लिया—कहती हूँ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है, मत जाओ, क्यों मेरी जान के गाहक हुए हो। उसकी देह में हीरे नहीं जड़े हैं, जो वहाँ कोई नोच लेगा?

जयराम ने मिन्नत करके कहा—मेरी तबीयत बिलकुल अच्छी है चम्मू, अगर कुछ कसर है, तो वह भी मिट जायगी। भला सोचो, यह कैसे मुमकिन है, कि एक देवी उन शोहदों के बीच में पिकेटिंग करने

जाय और मैं बैठा रहूँ। मेरा वहाँ रहना जरूरी है। अगर कोई बात आ पड़ी, तो कम से कम मैं लोगों को समझा तो सकूँगा।

चम्मू ने जलकर कहा—यह क्यों नहीं कहते, कि कोई और ही चीज़ खींचे लिये जाती है।

जयराम ने मुसकिराकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो—यह बात तुम्हारे दिल से नहीं, कंठ से निकल रही है और कतराकर निकल गया। फिर द्वार पर खड़ा होकर बोला—शहर में तीन लाख से कुछ ही कम आदमी हैं, कमेटी में भी ३० मेम्बर हैं; मगर सब के सब जी चुरा रहे हैं। लोगों को अच्छा बहाना मिल गया, कि शराबखानों पर धरना देने के लिए स्त्रियों ही की ज़रूरत है। आख़िर क्यों स्त्रियों ही को इस काम के लिए उपयुक्त समझा जाता है? इसी लिए कि मरदों के सिर भूत सवार हो जाता है, और जहाँ नम्रता से काम लेना चाहिये, वहाँ लोग उग्रता से काम लेने लगते हैं। वे देवियाँ क्या इसी योग्य हैं, कि शोहदों के फ़िक़रे सुनें और उनकी कुदृष्टि का निशाना बनें? कम से कम मैं यह नहीं देख सकता।

वह लँगड़ाता हुआ घर से निकल पड़ा। चम्मू ने फिर उसे रोकने का प्रयास नहीं किया। रास्ते में एक स्वयंसेवक मिल गया। जयराम ने उसे साथ लिया और एक ताँगे पर बैठकर चला। शराबखाने से कुछ दूर इधर एक लेमनेड-बर्फ की दूकान थी। उसने ताँगे को छोड़ दिया और वालंटियर को शराबख़ाने भेजकर खुद उसी दूकान में जा बैठा।

दूकानदार ने लेमनेड का एक ग्लास उसे देते हुए कहा—बाबूजी, कलवाले चारो बदमाश आज फिर आये हुए हैं। आपने न बचाया होता, तो आज शराब या ताड़ी की जगह हल्दी-गुड़ पीते होते।

जयराम ने ग्लास लेकर कहा—तुम लोग बीच में न कूद पड़ते, तो मैंने उन सबों को ठीक कर लिया होता।

दूकानदार ने प्रतिवाद किया—नहीं बाबूजी, वह सब छुटे हुए गुंडे हैं। मैं तो उन्हें अपनी दूकान के सामने खड़ा भी नहीं होने देता। चारो तीन-तीन साल काट आये हैं।

अभी बीस मिनट भी न गुज़रे होंगे, कि एक स्वयंसेवक आकर खड़ा हो गया। जयराम ने सचिंत होकर पूछा—कहो, वहाँ क्या हो रहा है?

स्वयंसेवक ने कुछ ऐसा मुँह बना लिया, जैसे वहाँ की दशा कहना वह उचित नहीं समझता, और बोला—कुछ नहीं, देवीजी आदमियों को समझा रही हैं।

जयराम ने उसकी ओर अतृप्त नेत्रों से ताका, मानो कह रहे हों—बस इतना ही! इतना तो मैं जानता ही था।

स्वयंसेवक ने एक क्षण के बाद फिर कहा—देवियों का ऐसे शोहदों के सामने जाना अच्छा नहीं।

जयराम ने अधीर होकर पूछा—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते, क्या बात है?

स्वयंसेवक डरते-डरते बोला—सब के सब उनसे दिल्लगी कर रहे हैं। देवियों का यहाँ आना अच्छा नहीं।

जयराम ने और कुछ न पूछा। डंडा उठाया और लाल-लाल आँखें निकाले बिजली की तरह कौंधकर शराबख़ाने के सामने जा पहुँचा और मिसेज़ सकसेना का हाथ पकड़कर पीछे हटाता हुआ शराबियों से बोला—अगर तुम लोगों ने देवियों के साथ ज़रा भी गुस्ताखी की, तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। कल मैंने तुम

लोगों की जान बचाई थी। आज इसी डंडे से तुम्हारी खोपड़ी तोड़कर रख दूँगा।

उसके बदले हुए तेवर देखकर सब के सब नशेबाज़ घबड़ा गये। वे कुछ कहना चाहते थे, कि मिसेज़ सकसेना ने गम्भीर भाव से पूछा—आप यहाँ क्यों आये? मैंने तो आपसे कहा था, अपनी जगह से न हिलियेगा। मैंने तो आपसे मदद न माँगी थी?

जयराम ने लज्जित होकर कहा—मैं इस नीयत से यहाँ नहीं आया था। एक ज़रूरत से इधर से निकला था। यहाँ जमाव देखकर आ गया। मेरे खयाल में आप अब यहाँ से चलें। मैं आज कांग्रेस कमेटी में यह सवाल पेश करूँगा, कि इस काम के लिए पुरुषों को भेजें।

मिसेज़ सकसेना ने तीखे स्वर में कहा—आपके विचार में दुनिया के सारे काम मरदों ही के लिए हैं?

जयराम—मेरा यह मतलब न था।

मिसेज़ सकसेना—तो आप जाकर आराम से लेटें और मुझे अपना काम करने दें।

जयराम वहीं सिर झुकाये खड़ा रहा।

मिसेज़ सकसेना ने पूछा—अब आप क्यों खड़े हैं?

जयराम ने विनीत स्वर में कहा—मैं भी यहीं एक किनारे खड़ा रहूँगा।

मिसेज़ सकसेना ने कठोर स्वर में कहा—जी नहीं, आप जायँ!

जयराम धीरे-धीरे लदी हुई गाड़ी की भाँति चला और आकर फिर उसी लेमनेड की दूकान पर बैठ गया। उसे ज़ोर की प्यास लगी थी। उसने एक ग्लास शर्बत बनवाया और सामने मेज़ पर रखकर विचार में डूब गया; मगर आँखें और कान उसी तरफ़ लगे हुए थे।

जब कोई आदमी दूकान पर आता, वह चौंककर उसकी तरफ़ ताकने लगता—वहाँ कोई नई बात तो नहीं हो गई ?

कोई आध घंटे के बाद वही स्वयंसेवक फिर डरा हुआ-सा आकर खड़ा हो गया। जयराम ने उदासीन बनने की चेष्टा करके पूछा—वहाँ क्या हो रहा है जी ?

स्वयंसेवक ने कानों पर हाथ रखकर कहा—मैं कुछ नहीं जानता बाबूजी, मुझसे कुछ न पूछिये।

जयराम ने एक साथ ही नम्र और कठोर होकर पूछा—फिर कोई छेड़-छाड़ हुई ?

स्वयंसेवक—जी नहीं, कोई छेड़-छाड़ नहीं हुई। एक आदमी ने देवीजी को धक्का दे दिया, वे गिर पड़ीं।

जयराम निस्पन्द बैठा रहा ; पर उसके अन्तराल में भूकम्प-सा मचा हुआ था। बोला—उनके साथ के स्वयंसेवक क्या कर रहे हैं ?

'खड़े हैं, देवीजी उन्हें बोलने ही नहीं देतीं।'

'तो क्या बड़े ज़ोर से धक्का दिया ?'

'जी हाँ, गिर पड़ीं। घुटनियों में चोट आ गई। वे आदमी साथ पी रहे थे। जब एक बोतल उड़ गई, तो उनमें से एक आदमी दूसरी बोतल लेने चला। देवीजी ने रास्ता रोक लिया। बस, उसने धक्का दे दिया। वही, जो काला-काला मोटा-सा आदमी है। कलवाले चारो आदमियों की शरारत है।'

जयराम उन्माद की दशा में वहाँ से उठा और दौड़ता हुआ शराब-खाने के सामने आया। मिसेज़ सकसेना सिर पकड़े ज़मीन पर बैठी हुई थीं और वह काला, मोटा आदमी दूकान के कठघरे के सामने खड़ा था। पचासों आदमी जमा थे। जयराम ने उसे देखते ही लपककर

उसकी गर्दन पकड़ ली और इतने जोर से दबाई, कि उसकी आँखें बाहर निकल आईं। मालूम होता था, उसके हाथ फ़ौलाद के हो गये हैं।

सहसा मिसेज़ सकसेना ने आकर उसका फ़ौलादी हाथ पकड़ लिया और भवें सिकोड़कर बोलीं—छोड़ दो इसकी गर्दन ! क्या इसकी जान ले लोगे ?

जयराम ने और ज़ोर से उसकी गर्दन दबाई और बोला—हाँ ले लूँगा। ऐसे दुष्टों की यही सज़ा है।

मिसेज़ सकसेना ने अधिकार गर्व से गर्दन उठाकर कहा—आपको यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं है।

एक दर्शक ने कहा—ऐसा दबाओ बाबूजी, कि साला ठण्डा हो जाय। इसने देवीजी को ऐसा ढकेला, कि बेचारी गिर पड़ीं। हमें तो बोलने का हुक्म नहीं है, नहीं तो हड्डी तोड़कर रख देते।

जयराम ने शराबी की गर्दन छोड़ दी। वह किसी बाज़ के चंगुल से छुटी हुई चिड़िया की तरह सहमा हुआ खड़ा हो गया। उसे एक धक्का देते हुए उसने मिसेज़ सकसेना से कहा—आप यहाँ से चलती क्यों नहीं ? आप जायँ मैं बैठता हूँ ; अगर छटाँक शराब बिक जाय, तो मेरा कान पकड़ लीजियेगा।

उसका दम फूलने लगा। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। वह खड़ा न रह सका। ज़मीन पर बैठकर रूमाल से माथे का पसीना पोछने लगा।

मिसेज़ सकसेना ने परिहास करके कहा—आप कांग्रेस नहीं हैं, कि मैं आपका हुक्म मानूँ। अगर आप यहाँ से न जायँगे, तो मैं सत्याग्रह करूँगी।

फिर एकाएक कठोर होकर बोलीं—जब तक कांग्रेस ने इस काम

का भार मुझ पर रखा है, आपको मेरे बीच में बोलने का कोई हक़ नहीं है। आप मेरा अपमान कर रहे हैं। कांग्रेस-कमेटी के सामने आपको इसका जवाब देना होगा।

जयराम तिलमिला उठा। बिना कोई जवाब दिये लौट पड़ा और वेग से घर की तरफ़ चला; पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, उसकी गति मन्द होती जाती थी। यहाँ तक कि बाजार के दूसरे सिरे पर आकर वह रुक गया। रस्सी यहाँ खतम हो गई। उसके आगे जाना उसके लिए असाध्य हो गया। जिस झटके ने उसे यहाँ तक भेजा था, उसकी शक्ति अब शेष हो गई थी। उन शब्दों में जो कटुता और चोट थी, उसमें अब उसे सहानुभूति और स्नेह की सुगन्ध आ रही थी।

उसे फिर चिन्ता हुई, न-जाने वहाँ क्या हो रहा है। कहीं उन बदमाशों ने और कोई दुष्टता न की हो, या पुलीस न आ जाय।

वह बाज़ार की तरफ मुड़ा; लेकिन एक क़दम ही चलकर फिर रुक गया। ऐसे पसोपेश में वह कभी न पड़ा था।

सहसा उसे वही स्वयंसेवक दौड़ा आता दिखाई दिया। वह बद-हवास होकर उससे मिलने के लिए खुद भी उसकी तरफ़ दौड़ा। बीच में दोनो मिल गये।

जयराम ने हाँफते हुए पूछा—क्या हुआ? क्यों भागे आ रहे हो?

स्वयंसेवक ने दम लेकर कहा—बड़ा ग़ज़ब हो गया बाबूजी! आपके आने के बाद वह काला शराबी बोतल लेकर दूकान से चला, तो देवीजी दरवाजे पर बैठ गईं। वह बार-बार देवीजी को हटाकर निक-लना चाहता है; पर वह फिर आकर बैठ जाती हैं। धक्कम-धक्के में उनके कपड़े फट गये हैं और कुछ चोट भी...

अभी बात पूरी न हुई थी, कि जयराम शराबख़ाने की तरफ दौड़ा!

(६)

जयराम शराबख़ाने के सामने पहुँचा, तो देखा मिसेज़ सकसेना के चारो स्वयंसेवक दूकान के सामने लेटे हुए हैं और मिसेज़ सकसेना एक किनारे सिर झुकाए खड़ी हैं। जयराम ने डरते-डरते उनके चेहरे पर निगाह डाली। अंचल पर रक्त की बूँदें दिखाई दीं। उसे फिर कुछ सुध न रही। खून की वह चिन्गारियाँ, जैसे उसके रोम-रोम में समा गईं। उसका खून खौलने लगा, मानो उसके सिर खून सवार हो गया हो। वह उन चारो शराबियों पर टूट पड़ा और पूरे ज़ोर के साथ लकड़ी चलाने लगा। एक-एक बूँद की जगह वह एक-एक घड़ा खून बहा देना चाहता था। खून उसे कभी इतना प्यारा न था। खून में इतनी उत्तेजना है, इसकी उसे ख़बर न थी।

वह पूरे जोर से लकड़ी चला रहा था। मिसेज़ सकसेना कब आकर उसके सामने खड़ी हो गईं, उसे कुछ पता न चला। जब वह ज़मीन पर गिर पड़ीं, तब उसे जैसे होश आ गया। उसने लकड़ी फेंक दी और वहीं निश्चल, निस्पंद खड़ा हो गया, मानो उसका रक्त-प्रवाह रुक गया है।

चारो स्वयंसेवकों ने दौड़कर मिसेज़ सकसेना को पंखा झलना शुरू किया। दूकानदार ठण्डा पानी लेकर दौड़ा। एक दर्शक डाक्टर को बुलाने भागा; पर जयराम वहीं बेजान खड़ा था, जैसे स्वयं अपने तिर-स्कार-भाव का पुतला बन गया हो। अगर इस वक्त कोई उसके दोनो हाथ काट डालता, कोई उसकी आँखें लाल लोहे से फोड़ देता, तब भी वह चूँ न करता।

फिर वहीं सड़क पर बैठकर उसने अपने लज्जित, तिरस्कृत, पराजित मस्तक को भूमि पर पटक दिया और बेहोश हो गया।

उसी वक्त उस काले मोटे शराबी ने बोतल ज़मीन पर पटक दी और उसके सिर पर ठंढा पानी डालने लगा।

एक शराबी ने लैसंसदार से कहा—तुम्हारा रोजगार अन्य लोगों की जान लेकर रहेगा। आज तो अभी दूसरा ही दिन है।

लैसंसदार ने कहा—कल से मेरा इस्तीफ़ा है। अब स्वदेशी कपड़े का रोज़गार करूँगा, जिसमें जस भी है और उपकार भी।

शराबी ने कहा—घाटा तो बहुत रहेगा।

दूकानदार ने क़िस्मत ठोंककर कहा—घाटा-नफा तो ज़िन्दगानी के साथ है।

जुलूस

पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झण्डियाँ और झण्डे लिये वन्देमातरम् गाते हुए माल के सामने से निकले। दोनो तरफ़ दर्शकों की दीवारें खड़ी थीं, मानो उन्हें इस जत्थे से कोई सरोकार नहीं है, मानो यह कोई तमाशा है और उनका काम केवल खड़े-खड़े देखना है।

शंभूनाथ ने दूकान की पटरी पर खड़े होकर अपने पड़ोसी दीनदयाल से कहा—सब के सब काल के मुँह में जा रहे हैं। आगे सवारों का दल मार-मारकर भगा देगा।

दीनदयाल ने कहा—महात्माजी भी सठिया गये हैं। जुलूस निकलने से स्वराज्य मिल जाता, तो अब तक कब का मिल गया होता। और जुलूस में हैं कौन लोग, देखो—लौंडे, लफंगे, सिरफिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी नहीं।

मैकू चट्टियों और स्लीपरों की माला गरदन में लटकाये खड़ा था। इन दोनो सेठों की बातें सुनकर हँसा।

शंभू ने पूछा—क्यों हँसे मैकू? आज रंग चोखा मालूम होता है।

मैकू—हँसा इस बात पर जो तुमने कही, कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है। बँगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, उन्हें कौन तकलीफ है। मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिये गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आयें पुलीस के कोड़े खाने के लिए, तुमने भी भली कही!

शंभू—तुम यह बातें क्या समझोगे मैकू, जिस काम में चार बड़े आदमी अगुआ होते हैं, उसकी सरकार पर भी धाक बैठ जाती है। लफंगों-लौंडों का गोल भला हाकिमों की निगाह में क्या जँचेगा।

मैकू ने ऐसी दृष्टि से देखा, जो कह रही थी—इन बातों के समझने का ठीका कुछ तुम्हींने नहीं लिया है, और बोला—बड़े आदमियों को तो हमीं लोग बनाते-बिगाड़ते हैं या कोई और? कितने ही लोग, जिन्हें कोई पूछता भी न था, हमारे ही बनाये बड़े आदमी बन गये और अब मोटरों पर निकलते हैं और हमें नीच समझते हैं। यह हम लोगों की तकदीर की खूबी है, कि जिसकी जरा बढ़ती हुई और उसने हमसे आँखें फेरीं। हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है। और हमें किसी बड़े आदमी की परवा नहीं है। सच पूछो, तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है।

इन्हें सरकार ने कोई अच्छी-सी जगह दे दी, बस उसका दम भरने लगे।

दीनदयाल—नया दारोग़ा बड़ा जल्लाद है। चौरस्ते पर पहुँचते ही हंटर लेकर पिल पड़ेगा। फिर देखना, सब कैसे दुम दबाकर भागते हैं। मज़ा आयेगा।

जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरस्ते पर पहुँचा, तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।

सहसा दारोग़ा बीरबलसिंह घोड़ा बढ़ाकर जुलूस के सामने आ गये और बोले—तुम लोगों को आगे जाने का हुक्म नहीं है।

जुलूस के बूढ़े नेता इब्राहीमअली ने आगे बढ़कर कहा—मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फ़साद न होगा। हम दूकानें लूटने या मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मक़सद इससे कहीं ऊंचा है।

बीरबल—मुझे यह हुक्म है, कि जुलूस यहाँ से आगे न जाने पाये।

इब्राहीम—आप अपने अफ़सरों से ज़रा पूछ न लें।

बीरबल—मैं इसकी कोई ज़रूरत नहीं समझता।

इब्राहीम—तो हम लोग यहीं बैठते हैं। जब आप लोग चले जायँगे तो हम निकल जायँगे।

बीरबल—यहाँ खड़े होने का भी हुक्म नहीं है। तुमको वापस जाना पड़ेगा।

इब्राहीम ने गम्भीर भाव से कहा—वापस तो हम न जायँगे। आपको या किसी को भी, हमें रोकने का कोई हक़ नहीं है। आप अपने सवारों, संगीनों और बन्दूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिये; मगर आप हमें लौटा नहीं सकते। न-जाने वह दिन कब

आयेगा, जब हमारे भाई-बन्द ऐसे हुक्मों की तामील करने से साफ़ इन्कार कर देंगे, जिनकी मंशा महज़ क़ौम को गुलामी की जंज़ीरों में जकड़े रखना है।

बीरबल ग्रेजुएट था। उसका बाप सुपरिटेंडेंट पुलीस था। उसकी नस-नस में रोब भरा हुआ था। अफ़सरों की दृष्टि में उसका बड़ा सम्मान था। ख़ासा गोरा चिट्टा, नीली आँखों और भूरे बालोंवाला तेजस्वी पुरुष था। शायद जिस वक्त वह कोट पहनकर ऊपर से हैट लगा लेता, तो वह भूल जाता था, कि मैं भी यहीं का रहनेवाला हूँ। शायद वह अपने को राज्य करनेवाली जाति का अंग समझने लगता था; मगर इब्राहीम के शब्दों में जो तिरस्कार भरा हुआ था, उसने ज़रा देर के लिए उसे लज्जित कर दिया; पर मुआमला नाजुक था। जुलूस को रास्ता दे देता है, तो जवाब तलब हो जायगा; वहीं खड़ा रहने देता है, तो यह सब न-जाने कब तक खड़े रहें; इस संकट में पड़ा हुआ था, कि उसने डी० एस० पी० को घोड़े पर आते देखा। अब सोच-विचार का समय न था। यही मौक़ा था कारगुज़ारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन निकाल लिया और घोड़े को एड़ लगाकर जुलूस पर चढ़ाने लगा। उसे देखते ही और सवारों ने भी घोड़ों को जुलूस पर चढ़ाना शुरू कर दिया। इब्राहीम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे जोर से पड़ा, कि उसकी आँखें तिलमिला गईं। खड़ा न रह सका। सिर पकड़कर बैठ गया। उसी वक्त दारोग़ाजी के घोड़े ने दोनो पाँव उठाये और जमीन पर बैठा हुआ इब्राहीम उसके टापों के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शान्त खड़ा था। इब्राहीम को गिरते देखकर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके; मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों

पर डण्डों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रवाहित न हो जाना उनके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है, तो फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें? लोगों को ख़याल आया, शहर के लाखों आदमियों की निगाहें हमारी तरफ़ लगी हुई हैं। यहाँ से यह झण्डा लेकर हम लौट जायँ, तो फिर किस मुँह से आज़ादी का नाम लेंगे; मगर प्राण-रक्षा के लिए भागने का किसी को ध्यान भी न आता था। यह पेट के भक्तों, किराए के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयंसेवकों का, आज़ादी के दीवानों का संगठित दल था—अपनी ज़िम्मेदारियों को ख़ूब समझता था। कितनों ही के सिरों से खून जारी था, कितनों ही के हाथ ज़ख्मी हो गये थे। एक हल्ले में यह लोग सवारों की सफों को चीर सकते थे; मगर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं—सिद्धान्त की, धर्म की, आदर्श की।

दस-बारह मिनट तक योंही डण्डों की बौछार होती रही और लोग शान्त खड़े रहे।

(२)

इस मार-धाड़ की ख़बर एक ही क्षण में बाज़ार में जा पहुँची। इब्राहीम घोड़े से कुचल गये, कई आदमी ज़ख्मी हो गये, कई के हाथ टूट गये; मगर न वे लोग पीछे फिरते हैं और न पुलीस उन्हें आगे जाने देती है।

मैकू ने उत्तेजित होकर कहा—अब तो भाई, यहाँ नहीं रहा जाता। मैं भी चलता हूँ।

दीनदयाल ने कहा—हम भी चलते हैं भाई, देखी जायगी!

शंभू एक मिनट तक मौन खड़ा रहा। एकाएक उसने भी दूकान

बढ़ाई और बोला—एक दिन तो मरना ही है, जो कुछ होना है हो। आख़िर वे लोग सभी के लिए तो जान दे रहे हैं। देखते-देखते अधिकांश दूकानें बन्द हो गईं। वह लोग, जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे, इधर-उधर से दौड़ पड़े और हज़ारों आदमियों का एक विराट् दल घटनास्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था, जिसे सिद्धान्त और आदर्श की परवा न थी। जो मरने के लिए ही नहीं, मारने के लिए भी तैयार थे। कितनों ही के हाथों में लाठियाँ थीं, कितने ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस सब के सब मन में एक दृढ़ संकल्प किये लपके चले जा रहे थे, मानो कोई घटा उमड़ी चली आती हो।

इस दल को दूर से देखते ही सवारों में कुछ हलचल पड़ी। बीरबल-सिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। डी० एस० पी० ने अपनी मोटर आगे बढ़ाई। शांति और अहिंसा के व्रतधारियों पर डण्डे बरसाना और बात थी, एक उन्मत्त दल से मुक़ाबला करना दूसरी बात। सवार और सिपाही पीछे खिसक गये।

इब्राहीम की पीठ पर घोड़े ने टाप रख दिया था। वह अचेत जमीन पर पड़े थे। इन आदमियों का शोर-गुल सुनकर आप ही आप उनकी आँखें खुल गईं। एक युवक को इशारे से बुलाकर कहा—क्यों कैलास, क्या कुछ लोग शहर से आ रहे हैं?

कैलास ने उस बढ़ती हुई घटा की ओर देखकर कहा—जी हाँ, हज़ारों आदमी हैं।

इब्राहीम—तो अब ख़ैरियत नहीं है। झण्डा लौटा दो। हमें फ़ौरन् लौट चलना चाहिये, नहीं तूफ़ान मच जायगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करना है। फ़ौरन् लौट चलो।

यह कहते हुए उन्होंने उठने की चेष्टा की ; मगर उठ न सके।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गये। झण्डियों के बाँसों, साफों और रूमालों से चटपट एक स्ट्रेचर तैयार हो गया। इब्राहीम को लोगों ने उस पर लिटा दिया और पीछे फिरे ; मगर क्या वह परास्त हो गये थे? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष होता हो, तो हो ; लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगान्तरकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके हित, परिस्थितियों के कारण हमारे हितों से भिन्न हैं। हमें उनसे बैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते थे, कि शहर में लूट और दंगे का बाज़ार गर्म हो जाय और हमारे धर्म-युद्ध का अन्त लुटी हुई दूकानें और टूटे हुए सिर हों। उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था, कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग, जो पहले उन पर हँसते थे, उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे। मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उसकी मनो-वृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जायँगे, उसी दिन स्वराज्य-सूर्य उदय होगा।

(३)

तीन दिन गुज़र गये थे। बीरबलसिंह अपने कमरे में बैठे चाय पी रहे थे और उनकी पत्नी मिट्ठन बाई शिशु को गोद में लिये सामने खड़ी थीं।

बीरबलसिंह ने कहा—मैं क्या करता उस वक्त। पीछे डी०

एस० पी० खड़ा था। अगर उन्हें रास्ता दे देता, तो अपनी जान मुसीबत में फँसती।

मिट्ठन बाई ने सिर हिलाकर कहा—तुम कम से कम इतना तो कर ही सकते थे, कि उन पर डण्डे न चलाने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डण्डे चलाना है? तुम ज्यादा से ज्यादा उन्हें रोक सकते थे। कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाय, तो शायद तुम्हें बड़ा आनन्द आयेगा, क्यों?

बीरबलसिंह ने खिसियाकर कहा—तुम तो बात नहीं समझती हो!

मिट्ठन बाई—मैं खूब समझती हूँ। डी० एस० पी० पीछे खड़ा था, तुमने सोचा होगा, ऐसी कारगुज़ारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या तुम समझते हो, उस दल में कोई भला आदमी न था? उसमें कितने ही आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसों को नौकर रख सकते हैं। विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बढ़े हुए होंगे; मगर तुम उन पर डण्डे चला रहे थे और उन्हें घोड़े से कुचल रहे थे। वाह री जवाँमर्दी!

बीरबल ने बेहयाई की हँसी के साथ कहा—डी० एस० पी० ने मेरा नाम नोट कर लिया है। सच!

दारोग़ा ने समझा था, यह सूचना देकर वह मिट्ठन बाई को ख़ुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं जबान से कही जाती हैं। स्वार्थ दिल की गहराइयों में बैठा होता है। वही गम्भीर विचार का विषय है।

मगर मिट्ठन बाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा न नजर आई, ऊपर की बातें शायद गहराइयों तक पहुँच गई थीं। बोलीं—जरूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्द तरक्की भी मिल जाय; मगर बेगु-

नाहों के खून से हाथ रँगकर तरक्की पाई, तो क्या पाई ! यह तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देश-द्रोह की क़ीमत है। तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।

एकाएक एक सिपाही ने बरामदे में खड़े होकर कहा—हुजूर, यह लिफ़ाफ़ा लाया हूँ। बीरबलसिंह ने बाहर निकलकर लिफ़ाफ़ा ले लिया और भीतर की सरकारी चिट्ठी निकालकर पढ़ने लगे। पढ़कर उसे मेज़ पर रख दिया।

मिट्ठन ने पूछा—क्या तरक्क़ी का परवाना आ गया ?

बीरबलसिंह ने झेंपकर कहा—तुम तो बनाती हो ! आज फिर कोई जुलूस निकलनेवाला है। मुझे उसके साथ रहने का हुक्म हुआ है।

मिट्ठन—फिर तो तुम्हारी चाँदी है, तैयार हो जाओ। आज फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़कर हाथ दिखाना ! डी० एस० पी० भी ज़रूर आयेंगे। अबकी तुम इंसपेक्टर हो जाओगे। सच !

बीरबलसिंह ने माथा सिकोड़कर कहा—कभी-कभी तुम बे-सिर-पैर की बातें करने लगती हो। मान लो, मैं जाकर चुपचाप खड़ा रहूँ, तो क्या नतीजा होगा। मैं नालायक समझा जाऊँगा और मेरी जगह कोई दूसरा आदमी भेज दिया जायगा। कहीं शुबहा हो गया, कि मुझे स्वराज्य-वादियों से सहानुभूति है, तो कहीं का न रहूँगा। अगर बर्ख़ास्त न हुआ तो लैन की हाज़िरी तो हो ही जायगी। आदमी जिस दुनिया में रहता है, उसी का चलन देखकर काम करता है। मैं बुद्धिमान न सही ; पर इतना जानता हूँ, कि ये लोग देश और जाति का उद्धार करने के लिए ही कोशिश कर रहे हैं। यह भी जानता हूँ, कि

सरकार इस खयाल को कुचल डालना चाहती है। ऐसा गधा नहीं हूँ, कि गुलामी की ज़िन्दगी पर गर्व करूँ; लेकिन परिस्थिति से मजबूर हूँ।

बाजे की आवाज़ कानों में आई। बीरबलसिंह ने बाहर जाकर पूछा। मालूम हुआ, स्वराज्यवालों का जुलूस आ रहा है। चटपट वर्दी पहनी, साफ़ा बाँधा और जेब में पिस्तौल रखकर बाहर आये। एक क्षण में घोड़ा तैयार हो गया। कांस्टेबल पहले ही से तैयार बैठे थे। सब लोग डबल मार्च करते हुए जुलूस की तरफ चले।

(४)

लोग डबल मार्च करते हुए कोई पन्द्रह मिनट में जुलूस के सामने पहुँच गये। इन लोगों को देखते ही अगणित कंठों से 'वन्दे मातरम्' की एक ध्वनि निकली, मानो मेघमण्डल में गर्जन-शब्द हुआ हो, फिर सन्नाटा छा गया। उस जुलूस में और इस जुलूस में कितना अन्तर था! वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर के और वेदना के बाद आज उस जीवन का अन्त हो गया, जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते समय वसीयत की थी, कि मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफ़न किया जाय और मेरे मज़ार पर स्वराज्य का झण्डा खड़ा किया जाय। उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का पर्दा-सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था, जैसे उसे गोली लग गई हो, और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाज़ार बन्द हो गये, इक्कों और ताँगों का कहीं पता न था जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक्त जनाज़ा उठा, लाख सवा

लाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आँसुओं मे लाल न हो।

बीरबलसिंह अपने कांस्टेबलों और सवारों को पाँच-पाँच गज़ के फ़ासले पर जुलूस के साथ चलने का हुक्म देकर खुद पीछे चले गये। पिछली सफ़ों में कोई पचास गज़ तक महिलाएँ थीं। दारोग़ा ने उनकी तरफ़ ताका। पहली ही क़तार में मिट्ठनबाई नज़र आईं। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा, वही थी। मिट्ठन ने उनकी तरफ़ एक बार देखकर और आँखें फेर लीं; पर उसके एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी, कि बीरबलसिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी-सी दौड़ गई। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हल्के, इतने दुर्बल, इतने ज़लील न हुए थे।

सहसा एक युवती ने दारोग़ाजी की तरफ़ देखकर कहा—कोतवाल साहब, कहीं हम लोगों पर डण्डे न चला दीजियेगा! आपको देखकर भय हो रहा है।

दूसरी बोली—आप ही के कोई भाई तो थे, जिन्होंने उस दिन माल के चौरस्ते पर इस वीर पुरुष पर आघात किये थे?

मिट्ठन ने कहा—आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे।

बीसियों ही मुँहों से आवाज़ें निकलीं—अच्छा, यह वही महाशय हैं। महाशय, आपको नमस्कार है! यह आप ही की कृपा का फल है, कि आज हम भी आपके डण्डे के दर्शनों के लिए आ खड़ी हुई हैं!

बीरबल ने मिट्ठन बाई की ओर आँखों का भाला चलाया; पर मुँह से कुछ न बोले। एक तीसरी महिला ने फिर कहा—हम एक जलसा करके आपको जयमाल पहनायेंगे और आपका यशोगान करेंगे।

चौथी ने कहा—आप बिलकुल अँगरेज़ मालूम होते हैं, जभी इतने गोरे हैं !

एक बुढ़िया ने आँखें चढ़ाकर कहा—मेरी कोख में ऐसा बालक जन्मा होता, तो उसकी गर्दन मरोड़ देती !

एक युवती ने उसका तिरस्कार करके कहा—आप भी खूब कहती हैं माताजी, कुत्ते तक तो नमक का हक़ अदा करते हैं, यह तो आदमी हैं।

बुढ़िया ने झल्लाकर कहा—पेट के गुलाम, हाय पेट ! हाय पेट !

इस पर कई स्त्रियों ने बुढ़िया को आड़े हाथों लिया और वह बेचारी लज्जित होकर बोली—अरे मैं कुछ कहती थोड़े ही हूँ; मगर ऐसा आदमी भी क्या, जो स्वार्थ के पीछे अन्धा हो जाय।

बीरबलसिंह अब और न सुन सके। घोड़ा बढ़ाकर जुलूस से कई गज़ पीछे चले गये। मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है। स्त्रियाँ लज्जित करती हैं, तो ग्लानि उत्पन्न होती है। बीरबलसिंह की इस वक्त इतनी हिम्मत न थी, कि फिर उन महिलाओं के सामने जाते। अपने अफ़सरों पर क्रोध आया। मुझी को बार-बार क्यों इन कामों पर तैनात किया जाता है। और लोग भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं लाया जाता ? क्या मैं ही सबसे गया-बीता हूँ ? क्या मैं ही सबसे भाव-शून्य हूँ ?

मिट्टी इस वक्त मुझे दिल में कितना कायर और नीच समझ रही होगी। शायद इस वक्त मुझे कोई मार डाले, तो वह ज़बान भी न खोलेगी। शायद मन में प्रसन्न होगी, कि अच्छा हुआ। अभी कोई जाकर साहब से कह दे, कि बीरबलसिंह की स्त्री जुलूस में निकली थी, तो कहीं का न रहूँ। मिट्टी जानती है, समझती है, फिर भी निकल

खड़ी हुई। मुझसे पूछा तक नहीं। कोई फ़िक्र नहीं है न, जभी ये बातें सूझती हैं। यहाँ सभी बेफ़िक्रे हैं, कॉलेजों और स्कूलों के लड़के, मज़-दूर, पेशेवर, इन्हें क्या चिन्ता! मरन तो हम लोगों की है, जिनके बाल-बच्चे हैं, और कुछ कुल-मर्यादा का ध्यान है। सब की सब मेरी तरफ़ कैसा घूर रही थीं, मानो खा जायँगी।

जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुज़रता हुआ चला जा रहा था। दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर, जँगलों पर, वृक्षों पर दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थीं। बीरबलसिंह को आज उनके चेहरों पर एक नई स्फूर्त्ति, एक नया उत्साह, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्त्ति थी वृद्धों के चेहरों पर, उत्साह युवकों के और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनकी यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथ-भ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की भाँति सिर झुकाकर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहला शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था, लोगों को बीच के नालों और जंगलों की परवा नहीं है, सब उस सुनहले लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

ग्यारह बजते-बजते जुलूस नदी के किनारे जा पहुँचा, जनाज़ा उतारा गया और लोग शव को गंगास्नान कराने के लिए चले। उसके शीतल, शांत, पीले मस्तक पर लाठी की चोट साफ़ नज़र आ रही थी। रक्त जमकर काला हो गया था। सिर के बड़े-बड़े बाल खून जम जाने से किसी चित्रकार की तूलिका की भाँति चिमट गये थे। कई हज़ार आदमी इस शहीद के अन्तिम दर्शनों के लिए मण्डल बाँधकर खड़े हो गये। बीरबलसिंह पीछे घोड़े पर सवार खड़े थे। लाठी की चोट उन्हें भी नज़र आई। उनकी आत्मा ने उन्हें ज़ोर से धिक्कारा। वह शव की ओर न

ताक सके। मुँह फेर लिया। जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिसके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं, उनका मैंने इतना अपमान किया। उनकी आत्मा इस समय स्वीकार कर रही थी, कि उस निर्दय प्रहार में कर्त्तव्य के भाव का लेश भी न था—केवल स्वार्थ था, कारगुजारी दिखाने की हवस और अफ़सरों को खुश करने की लिप्सा। हज़ारों आँखें क्रोध से भरी हुई उनकी ओर देख रही थीं; पर वह सामने ताकने का साहस न कर सकते थे।

एक कांस्टेबल ने आकर प्रशंसा की—हुज़ूर का हाथ गहरा पड़ा था। अभी तक खोपड़ी खुली हुई है। सबकी आँखें खुल गईं।

बीरबल ने उपेक्षा की—मैं इसे अपनी जवाँमर्दी नहीं, अपना कमीनापन समझता हूँ।

कांस्टेबल ने फिर खुशामद की—बड़ा सरकश आदमी था हुज़ूर!

बीरबल ने तीव्र भाव से कहा—चुप रहो! जानते भी हो, सरकश किसे कहते हैं? सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते हैं; उन्हें सरकश नहीं कहते, जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरते हों। हमारी बदनसीबी है, कि जिनकी मदद करनी चाहिये, उनका विरोध कर रहे हैं। यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है।

स्नान समाप्त हुआ। जुलूस यहाँ से फिर रवाना हुआ।

(४)

शव को जब खाक के नीचे सुलाकर लोग लौटने लगे, तो दो बज रहे थे। मिट्ठन बाई स्त्रियों के साथ-साथ कुछ दूर तक तो आई; पर क्वीन्स-पार्क में आकर ठिठक गईं। घर जाने की इच्छा न हुई। वह जीर्ण, आहत, रक्त-रंजित शव, मानो उसके अन्तस्तल में बैठा उसे धिक्कार

रहा था। पति से उसका मन इतना विरक्त हो गया था, कि अब उसे धिक्कारने की भी उसकी इच्छा न थी। ऐसे स्वार्थी मनुष्य पर भय के सिवा और किसी चीज़ का असर हो सकता है, इसका उसे विश्वास ही न था।

वह बड़ी देर तक पार्क में घास पर बैठी सोचती रही; पर अपने कर्त्तव्य का कुछ निश्चय न कर सकी। मैके जा सकती थी; किन्तु वहाँ से महीने दो महीने में फिर इसी घर में आना पड़ेगा। नहीं, मैं किसी की आश्रित न बनूँगी। क्या मैं अपने गुज़र-बसर को भी नहीं कमा सकती? उसने स्वयं भाँति-भाँति की कठिनाइयों की कल्पना की; पर आज उसकी आत्मा में न-जाने इतना बल कहाँ से आ गया था। इन कल्पनाओं का ध्यान में लाना ही उसे अपनी कमज़ोरी मालूम हुई।

सहसा उसे इब्राहीमअली की वृद्धा विधवा का ख़याल आया। उसने सुना था, उसके लड़के-बाले नहीं हैं। बेचारी अकेली बैठी रो रही होगी। कोई तसल्ली देनेवाला भी पास न होगा। वह उनके मकान की ओर चली। पता उसने पहले ही अपने साथ की औरतों से पूछ लिया था। वह दिल में सोचती जाती थी—मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उन्हें किन शब्दों में समझाऊँगी। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह इब्राहीमअली के घर पर पहुँच गई। मकान एक गली में था, साफ़-सुथरा; लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थी। उसने धड़कते हुए हृदय से अन्दर क़दम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर वह वृद्धा बैठी हुई थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान दिया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भर वृद्धा से कुछ बातें कर रहा था। मिट्ठन उस युवक को देखकर चौंक पड़ी—वह बीरबलसिंह थे।

उसने क्रोधमय आश्चर्य से पूछा—तुम यहाँ कैसे आये ?

बीरबलसिंह ने कहा—उसी तरह, जैसे तुम आईं। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ।

मिट्ठन के गोरे मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्ज्वल विभूति नज़र आई, वह अकथनीय थी। ऐसा जान पड़ा, मानो उसके जन्म-जन्मान्तर के क्लेश मिट गये हैं; वह चिन्ता और माया के बन्धनों से मुक्त हो गई है।

मैकू

—

क़ादिर और मैकू ताड़ीख़ाने के सामने पहुँचे, तो वहाँ काँग्रेस के वालंटियर झंडा लिये खड़े नज़र आये। दरवाज़े के इधर-उधर हज़ारों दर्शक खड़े थे। शाम का वक़्त था। इस वक़्त इस गली में पियक्कड़ों के सिवा और कोई न आता था। भले आदमी इधर से निकलते झिझकते थे। पियक्कड़ों की छोटी-छोटी टोलियाँ आती-जाती रहती थीं। दो-चार वेश्याएँ दूकान के सामने खड़ी नज़र आती थीं। आज यह भीड़-भाड़ देखकर मैकू ने कहा—बड़ी भीड़ है बे, कोई दो-तीन सौ आदमी होंगे!

क़ादिर ने मुसकिराकर कहा—भीड़ देखकर डर गये क्या? यह सब हुर्र हो जायँगे, एक भी न टिकेगा। यह लोग तमाशा देखने आये हैं, लाठियाँ खाने नहीं आये हैं।

मैकू ने सन्देह के स्वर में कहा—मगर पुलीस के सिपाही भी तो बैठे हैं। ठीकेदार ने तो कहा था, पुलीस न बोलेगी।

क़ादिर—हाँ बे, पुलीस न बोलेगी ; तेरी नानी क्यों मरी जा रही है। पुलीस वहाँ बोलती है, जहाँ चार पैसे मिलते हैं, या जहाँ कोई औरत का मामला होता है। ऐसी बेफजूल बातों में पुलीस नहीं पड़ती। पुलीस तो और शह दे रही है। ठीकेदार से साल में सैकड़ों रुपए मिलते हैं। पुलिस इस वक्त उसकी मदद न करेगी, तो कब करेगी ?

मैकू—चलो, आज दस हमारे भी सीधे हुए। मुफ़्त में पियेंगे वह अलग। मगर सुनते हैं कांग्रेसवालों में बड़े-बड़े मालदार लोग सरीक हैं। वह कहीं हम लोगों से कसर निकालें, तो बुरा होगा।

क़ादिर—अबे कोई कसर-वसर नहीं निकालेगा, तेरी जान क्यों निकल रही है ? कांग्रेसवाले किसी पर हाथ नहीं उठाते, चाहे कोई उन्हें मार ही डाले। नहीं तो उस दिन जुलूस में दस-बारह चौकीदारों की मजाल थी, कि दस हजार आदमियों को पीटकर रख देते। चार तो वहीं ठण्ढे हो गये थे, मगर एक ने भी हाथ नहीं उठाया। इनके जो महात्मा हैं, वह बड़े भारी फकीर हैं। उनका हुक्म है, कि चुपके से मार खा लो, लड़ाई मत करो।

यों बातें करते-करते दोनों ताड़ीखाने के द्वार पर पहुँच गये। एक स्वयंसेवक हाथ जोड़कर सामने आ गया और बोला—भाई साहब, आपके मज़हब में ताड़ी हराम है !

मैकू ने बात का जवाब चाँटे से दिया। ऐसा तमाचा मारा, कि स्वयंसेवक की आँखों में खून आ गया। ऐसा मालूम होता था, गिरा चाहता है। दूसरे स्वयंसेवक ने दौड़कर उसे सँभाला। पाँचों उँगलियों का रक्तमय प्रतिबिम्ब झलक रहा था।

मगर वालंटियर तमाचा खाकर भी अपने स्थान पर खड़ा रहा।

मैकू ने कहा—अब हटता है कि और लेगा ?

स्वयंसेवक ने नम्रता से कहा—अगर आपकी यही इच्छा है, तो सिर सामने किये हुए हूँ। जितना चाहिये, मार लीजिये। मगर अंदर न जाइये।

यह कहता हुआ वह मैकू के सामने बैठ गया।

मैकू ने स्वयंसेवक के चेहरे पर निगाह डाली। उसकी पाँचों उँगलियों के निशान झलक रहे थे। मैकू ने इसके पहले अपनी लाठी से टूटे हुए कितने ही सिर देखे थे, पर आज की-सी ग्लानि उसे कभी न हुई थी। वह पाँचों उँगलियों के निशान किसी पंचशूल की भाँति उसके हृदय में चुभ रहे थे।

क़ादिर चौकीदारों के पास खड़ा सिगरेट पीने लगा था। वहीं खड़े-खड़े बोला—अबे खड़ा देखता क्या है, लगा कसके एक हाथ!

मैकू ने स्वयंसेवक से कहा—तुम उठ जाओ, मुझे अन्दर जाने दो।

'आप मेरी छाती पर पाँव रखकर चले जा सकते हैं।'

'मैं कहता हूँ, उठ जाओ, मैं अन्दर ताड़ी न पीऊँगा, एक दूसरा ही काम है।'

उसने यह बात कुछ इस दृढ़ता से कही, कि स्वयंसेवक उठकर रास्ते से हट गया। मैकू ने मुसकिराकर उसकी ओर ताका। स्वयंसेवक ने फिर हाथ जोड़कर कहा—अपना वादा भूल न जाना।

एक चौकीदार बोला—लात के आगे भूत भागता है। एक ही तमाचे में ठीक हो गया!

क़ादिर ने कहा—वह तमाचा बच्चा को जन्म भर याद रहेगा। मैकू के तमाचे सह लेना मामूली काम नहीं है।

चौकीदार—आज ऐसा ठोको इन सबों को, कि फिर इधर आने का नाम न लें !

क़ादिर—खुदा ने चाहा, तो फिर इधर आयेंगे भी नहीं, मगर हैं सब बड़े हिम्मती। जान को हथेली पर लिये फिरते हैं।

(२)

मैकू भीतर पहुँचा, तो ठीकेदार ने स्वागत किया—आओ मैकू मियाँ ! एक ही तमाचा लगाकर क्यों रह गये ? एक तमाचे का भला इन पर क्या असर होगा ? बड़े लतखोर हैं सब ! कितना ही पीटो, असर ही नहीं होता। बस, आज सबों के हाथ-पाँव तोड़ दो, फिर इधर न आयें।

मैकू—तो क्या और न आयेंगे ?

ठीकेदार—फिर आते सबों की नानी मरेगी।

मैकू—और जो कहीं इन तमाशा देखनेवालों ने मेरे ऊपर डण्डे चलाये तो ?

ठीकेदार—तो पुलीस उनको मार भगायेगी। एक झड़प में मैदान साफ़ हो जायगा। लो जब तक एकाध बोतल पी लो। मैं तो आज मुफ़्त की पिला रहा हूँ।

मैकू—क्या इन ग्राहकों को भी मुफ़्त ?

ठीकेदार—क्या करता, कोई आता ही न था। जब सुना, कि मुफ़्त मिलेगी, तो सब धँस पड़े।

मैकू—मैं तो आज न पीऊँगा।

ठीकेदार—क्यों ? तुम्हारे लिए तो आज ताज़ी ताड़ी मँगवाई है।

मैकू—योंही, आज पीने की इच्छा नहीं है। लाओ, कोई लकड़ी निकालो, हाथ से मारते नहीं बनता।

ठीकेदार ने लपककर एक मोटा सोंटा मैकू के हाथ में दे दिया और डण्डेबाज़ी का तमाशा देखने के लिए द्वार पर खड़ा हो गया।

मैकू ने एक क्षण डण्डे को तौला, तब उछलकर ठीकेदार को ऐसा डण्डा रसीद किया, कि वह वहीं दोहरा होकर द्वार में गिर पड़ा। इसके बाद मैकू ने पियक्कड़ों की ओर रुख किया और लगा डण्डों की वर्षा करने। न आगे देखता था, न पीछे, बस डण्डे चलाये जाता था।

ताड़ीबाज़ों के नशे हिरन हुए। घबड़ा-घबड़ाकर भागने लगे; पर किवाड़ों के बीच में ठीकेदार की देह बिंधी पड़ी थी। उधर से फिर भीतर की ओर लपके। मैकू ने फिर डण्डों से आवाहन किया। आख़िर सब ठीकेदार की देह को रौंद-रौंदकर भागे। किसी का हाथ टूटा, किसी का सिर फूटा, किसी की कमर टूटी। ऐसी भगदड़ मची, कि एक मिनट के अन्दर ताड़ीखाने में एक चिड़िये का पूत भी न रह गया।

एकाएक मटकों के टूटने की आवाज़ आई। एक स्वयंसेवक ने भीतर झाँककर देखा, तो मैकू मटकों को विध्वंस करने में जुटा हुआ था। बोला—भाई साहब, अजी भाई साहब, यह आप क्या गज़ब कर रहे हैं। इससे तो कहीं अच्छा था, कि आपने हमारे ही ऊपर अपना गुस्सा उतारा होता।

मैकू ने दो-तीन हाथ चलाकर बाकी बची हुई बोतलों और मटकों का सफ़ाया कर दिया और तब चलते-चलते ठीकेदार को एक लात जमाकर बाहर निकल आया।

क़ादिर ने उसको रोककर पूछा—तू पागल तो नहीं हो गया बे? क्या करने आया था, और क्या कर रहा है।

मैकू ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देखकर कहा—हाँ, अल्लाह का शुक्र है, कि मैं जो करने आया था, वह न करके कुछ और ही कर बैठा। तुममें कूवत हो, तो वालंटरों को मारो, मुझमें कूवत नहीं है। मैंने तो एक थप्पड़ लगाया, उसका रंज अभी तक है और हमेशा रहेगा! तमाचे के निशान मेरे कलेजे पर बन गये हैं। जो लोग दूसरों को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देने को खड़े हैं, उन पर वही हाथ उठायेगा, जो पाजी है, कमीना है, नामर्द है। मैकू फ़िसादी है, लठैत है, गुण्डा है; पर कमीना और नामर्द नहीं है। कह दो पुलीस-वालों से, चाहें तो मुझे गिरफ़्तार कर लें।

कई ताड़ीबाज़ खड़े सिर सहलाते हुए, उसकी ओर सहमी हुई आँखों से ताक रहे थे। कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती थी। मैकू ने उनकी ओर देखकर कहा—मैं कल फिर आऊँगा। अगर तुममें से किसी को यहाँ देखा, तो खून ही पी जाऊँगा! जेल और फाँसी से नहीं डरता। तुम्हारी भलमनसी इसी में है, कि अब भूलकर भी इधर न आना। यह कांग्रेसवाले तुम्हारे दुश्मन नहीं हैं। तुम्हारे और तुम्हारे बाल-बच्चों की भलाई के लिए ही तुम्हें पीने से रोकते हैं। इन पैसों से अपने बाल-बच्चों की परवरिस करो, घी-दूध खाओ। घर में तो फाके हो रहे हैं, घरवाली तुहारे नाम को रो रही है, और तुम यहाँ बैठे पी रहे हो? लानत है इस नशेबाज़ी पर।

मैकू ने वहीं डण्डा फेंक दिया और क़दम बढ़ाता हुआ घर चला। इस वक्त तक हज़ारों आदमियों का हुजूम हो गया था। सभी श्रद्धा, प्रेम और गर्व की आँखों से मैकू को देख रहे थे।

आहुति

आनंद ने गद्देदार कुरसी पर बैठकर सिगार जलाते हुए कहा—आज विशम्भर ने कैसी हिमाक़त की! इम्तहान क़रीब है और आप आज वालंटियर बन बैठे। कहीं पकड़ गये, तो इम्तहान से हाथ धोयेंगे। मेरा तो ख़याल है कि वज़ीफ़ा भी बंद हो जायगा।

सामने दूसरे बेंच पर रूपमणि बैठी एक अख़बार पढ़ रही थी। उसकी आँखें अख़बार की तरफ़ थीं; पर कान आनन्द की तरफ़ लगे हुए थे। बोली—यह तो बुरा हुआ। तुमने समझाया नहीं? आनन्द ने मुँह बनाकर कहा—जब कोई अपने को दूसरा गांधी समझने लगे, तो उसे समझाना मुशकिल हो जाता है। वह उलटे मुझे समझौने लगता।

रूपमणि ने अख़बार को समेटकर बालों को सँभालते हुए कहा—तुमने मुझे भी तो नहीं बताया, शायद मैं उसे रोक सकती।

आनन्द ने कुछ चिढ़कर कहा—तो अभी क्या हुआ, अभी तो शायद कांग्रेस-ऑफ़िस ही में हो। जाकर रोक लो।

आनन्द और विशम्भर, दोनो ही युनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। आनन्द के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थीं, सरस्वती भी; विशम्भर फूटी तक़दीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा-सा वज़ीफ़ा दे दिया था। बस यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं की समकक्ष थी; पर इस साल उसने कॉलेज छोड़ दिया था। स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। दोनो युवक कभी-कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था उसका हृदय लेने के लिए; विशम्भर आता था योंही। जी पढ़ने में न लगता, या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उससे अपनी विपत्ति-कथा कहकर उसका चित्त कुछ शान्त हो जाता था। आनन्द के सामने कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। आनन्द के पास उसके लिए सहानुभूति का एक शब्द भी न था। वह उसे फटकारता था, ज़लील करता था और बेवकूफ़ बनाता था। विशम्भर में उससे बहस करने की सामर्थ्य न थी। सूर्य के सामने दीपक की हस्ती ही क्या? आनन्द का उस पर मानसिक आधिपत्य था। जीवन में पहली बार उसने उस आधिपत्य को अस्वीकार किया था और उसी की शिकायत लेकर आनन्द रूपमणि के पास आया था। महीनों विशम्भर ने आनन्द के तर्क पर अपने भीतर के आग्रह को ढाला; पर तर्क से परास्त होकर भी उसका हृदय विद्रोह करता रहा। बेशक उसका यह साल ख़राब हो जायगा। संभव है, उसके छात्र-जीवन ही का अन्त हो जाय, फिर इस १४-१५ वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जायगा, न खुदा ही मिलेगा न सनम का विसाल ही नसीब होगा। आग में कूदने से क्या फ़ायदा। युनिवर्सिटी में रहकर भी तो

बहुत-कुछ देश का काम किया जा सकता है। आनन्द महीने में कुछ न कुछ चन्दा जमा कर देता है, दूसरे छात्रों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है। विशम्भर को भी आनन्द ने यही सलाह दी। इस तर्क ने उसकी बुद्धि को तो जीत लिया; पर उसके मन को न जीत सका। आज जब आनन्द कॉलेज गया तो विशम्भर ने स्वराज्य-भवन की राह ली। आनन्द कॉलेज से लौटा, तो उसे अपनी मेज़ पर विशम्भर का पत्र मिला। लिखा था—

'प्रिय आनंद,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है ; पर न-जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता ; पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता ; पर मरता है, रोना नहीं चाहता ; पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। युनिवर्सिटी के लिए आत्मा की हत्या नहीं कर सकता। यह इज़्ज़त का सवाल है, और इज़्ज़त किसी तरह का समझौता (Compromise) नहीं कर सकती।

तुम्हारा—

विशम्भर'

ख़त पढ़कर आनन्द के जी में आया, कि विशम्भर को समझाकर लौटा लाये; पर उसकी हिमाक़त पर गुस्सा आया और उसी तैश में वह रूपमणि के पास जा पहुँचा। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती—जाकर उसे लौटा लाओ, तो शायद वह चला जाता ;

पर उसका यह कहना कि मैं उसे रोक लेती, उसके लिए असह्य था। उसके जवाब में रोष था, रुखाई थी और शायद कुछ हसद भी था।

रूपमणि ने गर्व से उसकी ओर देखा और बोली—अच्छी बात है, मैं जाती हूँ।

एक क्षण के बाद उसने डरते-डरते पूछा—तुम क्यों नहीं चलते?

फिर वही ग़लती। अगर रूपमणि उसकी ख़ुशामद करके कहती, तो आनन्द ज़रूर उसके साथ चला जाता; पर उसके प्रश्न में पहले ही यह भाव छिपा था, कि आनन्द जाना नहीं चाहता। अभिमानी आनन्द इस तरह नहीं जा सकता। उसने उदासीन भाव से कहा—मेरा जाना व्यर्थ है। तुम्हारी बातों का ज़्यादा असर होगा। मेरी मेज़ पर यह ख़त छोड़ गया था। जब वह आत्मा और कर्तव्य और आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें सोच रहा है और अपने को भी कोई ऊँचे दरजे का आदमी समझ रहा है, तो मेरा उस पर कोई असर न होगा।

उसने जेब से पत्र निकालकर रूपमणि के सामने रख दिया। इन शब्दों में जो संकेत और व्यंग्य था, उसने एक क्षण तक रूपमणि को उसकी तरफ़ देखने न दिया। आनन्द के इस निर्दय प्रहार ने उसे आहत-सा कर दिया था; पर एक ही क्षण में विद्रोह की एक चिनगारी-सी उसके अन्दर जा घुसी। उसने स्वच्छन्द भाव से पत्र को लेकर पढ़ा। पढ़ा सिर्फ़ आनन्द के प्रहार का जवाब देने के लिए; पर पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा तेज से कठोर हो गया, गरदन तन गई, आँखों में उत्सर्ग की लाली आ गई।

उसने मेज़ पर पत्र रखकर कहा—नहीं, अब मेरा जाना भी व्यर्थ है।

आनन्द ने अपनी विजय पर फूलकर कहा—मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया, इस वक्त उसके सिर पर भूत सवार है, उस पर किसी के समझाने का असर न होगा। जब साल भर जेल में चक्की पीस लेंगे और वहाँ से तपेदिक़ लेकर निकलेंगे, या पुलीस के डंडों से सिर और हाथ-पाँव तुड़वा लेंगे, तो बुद्धि ठिकाने आयेगी। अभी तो जय-जयकार और तालियों के स्वप्न देख रहे होंगे।

रूपमणि सामने आकाश की ओर देख रही थी। नीले आकाश में एक छाया-चित्र-सा नज़र आ रहा था—दुर्बल, सूखा हुआ नग्न शरीर, घुटनों तक धोती, चिकना सिर, पोपला मुँह, तप, त्याग और सत्य की सजीव मूर्ति।

आनंद ने फिर कहा—अगर मुझे मालूम हो, कि मेरे रक्त से देश का उद्धार हो जायगा, तो मैं आज उसे देने को तैयार हूँ; लेकिन मेरे जैसे सौ-पचास आदमी निकल ही आयें, तो क्या होगा। प्राण देने के सिवा और तो कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दीखता।

रूपमणि अब भी वही छाया-चित्र देख रही थी। वह छाया मुसकिरा रही थी, वह सरल-मनोहर मुसकान, जिसने विश्व को जीत लिया है।

आनंद फिर बोला—जिन महाशयों को परीक्षा का भूत सताया करता है, उन्हें देश का उद्धार करने की सूझती है। पूछिये, आप अपना उद्धार तो कर ही नहीं सकते, देश का क्या उद्धार कीजियेगा। इधर फ़ेल होने से उधर के डण्डे फिर भी हलके हैं!

रूपमणि की आँखें आकाश की ओर थीं। छाया-चित्र कठोर हो गया था।

आनंद ने जैसे चौंककर कहा—हाँ, आज बड़ा मज़ेदार फ़िल्म है। चलती हो? पहले शो में लौट आयें।

रूपमणि ने जैसे आकाश से नीचे उतरकर कहा—नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।

आनंद ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर कहा—तबीयत तो अच्छी है? रूपमणि ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। बोली—हाँ, तबीयत में क्या हुआ है?

'तो चलती क्यों नहीं?'

'आज जी नहीं चाहता।'

'तो फिर मैं भी न जाऊँगा।'

'बहुत ही उत्तम, टिकट के रुपए कांग्रेस को दे दो।'

'यह तो टेढ़ी शर्त है; लेकिन मंज़ूर!'

'कल रसीद मुझे दिखा देना।'

'तुम्हें मुझ पर इतना विश्वास भी नहीं!'

आनंद होस्टल चला। ज़रा देर बाद रूपमणि स्वराज्य-भवन की ओर चली।

[२]

रूपमणि स्वराज्य-भवन पहुँची, तो स्वयंसेवकों का एक दल विलायती कपड़े के गोदामों को पिकेट करने जा रहा था। विसम्भर इस दल में न था।

दूसरा दल शराब की दूकानों पर जाने को तैयार खड़ा था। विशम्भर इसमें भी न था।

रूपमणि ने मंत्री के पास जाकर कहा—आप बता सकते हैं विशम्भरनाथ कहाँ हैं?

मंत्री ने पूछा—वही, जो आज भरती हुए हैं ?

'जी हाँ, वही।'

'बड़ा दिलेर आदमी है। देहातों को तैयार करने का काम लिया है। स्टेशन पहुँच गया होगा। सात बजे की गाड़ी से जा रहा है।'

'तो अभी स्टेशन पर होंगे ?'

मंत्री ने घड़ी पर नज़र डालकर जवाब दिया—हाँ, अभी तो शायद स्टेशन पर मिल जायँ।

रूपमणि ने बाहर निकलकर साइकिल तेज़ की। स्टेशन पर पहुँची तो देखा, विशम्भर प्लेट-फ़ार्म पर खड़ा है।

रूपमणि को देखते ही लपककर उसके पास आया और बोला—तुम यहाँ कैसे आईं ? आज आनंद से तुम्हारी मुलाक़ात हुई थी ?

रूपमणि ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा—यह तुमने क्या सूरत बना रखी है ? क्या पाँव में जूता पहनना भी देशद्रोह है ?

विशम्भर ने डरते-डरते पूछा—आनंद बाबू ने तुमसे कुछ कहा नहीं ?

रूपमणि ने स्वर को कठोर बनाकर कहा—जी हाँ, कहा। तुम्हें यह क्या सूझी। दो साल से कम के लिए न जाओगे ?

विशम्भर का मुँह गिर गया। बोला—जब यह जानती हो, तो क्या तुम्हारे पास मेरी हिम्मत बँधाने के लिए दो शब्द नहीं हैं !

रूपमणि का हृदय मसोस उठा; मगर बाहरी उपेक्षा को न त्याग सकी। बोली—तुम मुझे दुश्मन समझते हो, या दोस्त ?

विशम्भर ने आँखों में आँसू भरकर कहा—तुम ऐसा प्रश्न क्यों करती हो, रूपमणि ? इसका जवाब मेरे मुँह से न सुनकर भी क्या तुम नहीं समझ सकतीं ?

रूपमणि—तो मैं कहती हूँ, तुम मत जाओ।

विशम्भर—यह दोस्त की सलाह नहीं है, रूपमणि। मुझे विश्वास है, तुम हृदय से यह नहीं कह रही हो। मेरे प्राणों का क्या मूल्य है, ज़रा यह सोचो। एम० ए० होकर भी सौ रुपए की नौकरी। बहुत बढ़ा तो तीन-चार सौ तक जाऊँगा। इसके बदले यहाँ क्या मिलेगा, जानती हो? सम्पूर्ण देश का स्वराज्य। इतने महान् हेतु के लिए मर जाना भी उस ज़िन्दगी से कहीं बढ़कर है। अब जाओ, गाड़ी आ रही है। आनन्द बाबू से कहना, मुझसे नाराज़ न हों।

रूपमणि ने आज तक इस मन्दबुद्धि युवक पर दया की थी। इस समय वह उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया। त्याग में हृदय को खींचने की जो शक्ति है, उसने रूपमणि को इतने वेग से खींचा कि परिस्थितियों का अन्तर मिट-सा गया। विशम्भर में जितने दोष थे, वे सभी अलंकार बन-बनकर चमक उठे। उसके हृदय की विशालता में वह किसी पत्नी की भाँति उड़-उड़कर आश्रय खोजने लगी।

रूपमणि ने उसकी ओर आतुर नेत्रों से देखकर कहा—मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

विशम्भर पर जैसे घड़ों का नशा चढ़ गया।

'तुमको? आनन्द बाबू मुझे ज़िंदा न छोड़ेंगे!'

'मैं आनन्द के हाथों बिकी नहीं हूँ।'

'आनन्द तो तुम्हारे हाथों बिके हुए हैं!'

रूपमणि ने विद्रोह भरी आँखों से उसकी ओर देखा; पर कुछ बोली नहीं। परिस्थितियाँ उसे इस समय बाधाओं-सी मालूम हो रही थीं। वह भी विशम्भर की भाँति स्वच्छन्द क्यों न हुई? सम्पन्न मा-बाप की अकेली लड़की, भोग-विलास में पली हुई, इस समय अपने को

क़ैदी समझ रही थी। उसकी आत्मा उन बन्धनों को तोड़ डालने के लिए ज़ोर लगाने लगी।

गाड़ी आ गई। मुसाफ़िर चढ़ने-उतरने लगे। रूपमणि ने सजल नेत्रों से कहा—तुम मुझे नहीं ले चलोगे ?

विशम्भर ने दृढ़ता से कहा—नहीं।

'क्यों ?'

'मैं इसका जवाब नहीं देना चाहता।'

'क्या तुम समझते हो, मैं इतनी विलासासक्त हूँ कि देहात में रह नहीं सकती ?'

विशम्भर लज्जित हो गया। यह भी एक बड़ा कारण था; पर उसने इनकार किया —नहीं, यह बात नहीं।

'फिर क्या बात है ? क्या यह भय है, पिताजी मुझे त्याग देंगे ?'

'अगर यह भय हो तो क्या वह विचार करने योग्य नहीं ?'

'मैं उसकी तृण-बराबर परवा नहीं करती।'

विशम्भर ने देखा, रूपमणि के चाँद-से मुख पर गर्वमय संकल्प का आभास था। वह उस संकल्प के सामने जैसे काँप उठा। बोला—मेरी यह याचना स्वीकार करो रूपमणि, मैं तुमसे विनती करता हूँ।

रूपमणि सोचती रही।

विशम्भर ने फिर कहा—मेरी ख़ातिर तुम्हें यह विचार छोड़ना पड़ेगा।

रूपमणि ने सिर झुकाकर कहा—अगर तुम्हारा यह आदेश है, तो मैं उसे मानूँगी विशम्भर। तुम दिल में समझते हो, मैं क्षणिक आवेश में आकर इस समय अपने भविष्य को ग़ारत करने जा रही हूँ। मैं तुम्हें दिखा दूँगी, यह मेरा क्षणिक आवेश नहीं है, दृढ़ संकल्प है। जाओ;

मगर मेरी इतनी बात मानना कि क़ानून के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली गई, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अञ्चल में लिये खड़ी रही।

[३]

रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी-सा फ़ोटो आलमारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मख़मली फ्रेम में लगाकर मेज़ पर रख दिया। आनन्द का फ़ोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो-चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढ़कर एक किनारे डाल दिये थे। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था! वह बड़ी हिफाज़त से राइटिंग-बॉक्स में बन्द कर दिये गये।

दूसरे दिन समाचार-पत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी।

दिन में एक बार स्वराज्य-भवन जाना उसका नियम हो गया। जलसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजें एक-एक करके सब फेंक दी गईं। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आईं। चरख़ा भी आया। वह घण्टों बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवायेगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फ़ुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया; पर

ज़्यादा देर बैठा नहीं। शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज़्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम को आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोड़कर कहा—तुमसे तो अब बातें करना भी मुश्किल है।

रूपमणि ने कुरसी पर बैठकर कहा—तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताज़ी ख़बर नहीं मिली? स्वराज्य-भवन में रोज़-रोज़ का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा—विशम्भर ने तो सुना देहातों में ख़ूब शोर-गुल मचा रखा है। जो काम उसके लायक़ था, वह मिल गया। यहाँ उसकी ज़बान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में ख़ूब गरजता होगा; मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं, तुम्हारे लिए यह चर्चा अनधिकार चेष्टा है, और बोली—आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें कांग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फ़ुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जाग्रति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है। और मज़ा यह है कि पिकेटिंग करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। अब तो वह पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा-भाव से कहा—तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा—इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं

मगर मेरी इतनी बात मानना कि क़ानून के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली गई, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अञ्चल में लिये खड़ी रही।

[३]

रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी-सा फ़ोटो आलमारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मख़मली फ्रेम में लगाकर मेज़ पर रख दिया। आनन्द का फ़ोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो-चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढ़कर एक किनारे डाल दिये थे। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था! वह बड़ी हिफाज़त से राइटिंग-बॉक्स में बन्द कर दिये गये।

दूसरे दिन समाचार-पत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी।

दिन में एक बार स्वराज्य-भवन जाना उसका नियम हो गया। जलसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजें एक-एक करके सब फेंक दी गईं। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आईं। चरख़ा भी आया। वह घण्टों बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवायेगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया; पर

ज़्यादा देर बैठा नहीं। शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज़्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम को आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोड़कर कहा—तुमसे तो अब बातें करना भी मुश्किल है।

रूपमणि ने कुरसी पर बैठकर कहा—तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताज़ी ख़बर नहीं मिली? स्वराज्य-भवन में रोज़-रोज़ का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा—विशम्भर ने तो सुना देहातों में ख़ूब शोर-गुल मचा रखा है। जो काम उसके लायक़ था, वह मिल गया। यहाँ उसकी ज़बान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में ख़ूब गरजता होगा; मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं, तुम्हारे लिए यह चर्चा अनधिकार चेष्टा है, और बोली—आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें कांग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फ़ुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जाग्रति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है। और मज़ा यह है कि पिकेटिंग करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। अब तो वह पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा-भाव से कहा—तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा—इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं

है। कल तो किसानों का एक बहुत बड़ा जलसा होनेवाला था। पूरे परगने के लोग जमा हुए होंगे। सुना है, आजकल देहातों से कोई मुक़दमा ही नहीं आता। वकीलों की नानी मरी जा रही है।

आनन्द ने कड़वेपन से कहा—यही तो स्वराज्य का मज़ा है कि ज़मींदार, वकील और व्यापारी सब मरें। बस, केवल मज़दूर और किसान रह जायँ।

रूपमणि ने समझ लिया, आज आनन्द तुलकर आया है। उसने भी जैसे आस्तीन चढ़ाते हुए कहा—तो तुम क्या चाहते हो कि ज़मींदार और वकील और व्यापारी ग़रीबों को चूस-चूसकर मोटे होते चले जायँ और जिन सामाजिक व्यवस्थाओं में ऐसा महान् अन्याय हो रहा है, उनके ख़िलाफ़ ज़बान तक न खोली जाय? तुम तो समाज-शास्त्र के पंडित हो। क्या किसी अर्थ में भी यह व्यवस्था आदर्श कही जा सकती है? सभ्यता के तीन मुख्य सिद्धान्तों का ऐसी दशा में किसी न्यूनतम मात्रा में भी व्यवहार हो सकता है?

आनन्द ने गर्म होकर कहा—शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हाँ, उसका रूप भले ही बदल जाय।

रूपमणि ने आवेश से कहा—अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेज़ी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जायँ। मैं समाज

की ऐसी व्यवस्था देखनी चाहती हूँ, जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके !

आनंद—यह तुम्हारी निज की कल्पना होगी ।

रूपमणि—तुमने अभी इस आन्दोलन का साहित्य पढ़ा ही नहीं ।

आनंद—न पढ़ा है, न पढ़ना चाहता हूँ ।

रूपमणि—इससे राष्ट्र की कोई बड़ी हानि न होगी ।

आनंद—तुम तो जैसे वह रहीं ही नहीं । बिलकुल काया-पलट हो गई ।

सहसा डाकिये ने कांग्रेस-बुलेटिन लाकर मेज़ पर रख दिया । रूपमणि ने अधीर होकर उसे खोला ; पहले शीर्षक पर नज़र पड़ते ही उसकी आँखों में जैसे नशा छा गया । अज्ञात रूप से गर्दन तन गई और चेहरा एक अलौकिक तेज से दमक उठा ।

उसने आवेश में खड़ी होकर कहा—विशम्भर पकड़ लिये गये और दो साल की सज़ा हो गई !

आनंद ने विरक्त मन से पूछा—किस मुआमले में सज़ा हुई ? रूपमणि ने विशम्भर के फ़ोटो को अभिमान की आँखों से देखकर कहा—रानीगंज में किसानों की विराट् सभा थी । वहीं पकड़ा है ।

आनंद—मैंने तो पहले ही कहा था, दो साल के लिए जायँगे । ज़िन्दगी ख़राब कर डाली ।

रूपमणि ने फटकार बताई—क्या डिग्री ले लेने ही से आदमी का जीवन सफल हो जाता है ? सारा ज्ञान, सारा अनुभव पुस्तकों ही में भरा हुआ है ? मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विशम्भर को दो सालों में हो जायगा, उतना दर्शन और क़ानून

की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षों में भी न होगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-बल मानो तो राष्ट्र-संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम में कभी हो ही नहीं सकते। तुम यह कह सकते हो कि हमारे लिए पेट की चिन्ता ही बहुत है, हमसे और कुछ हो ही नहीं सकता, हममें न उतना साहस है, न बल, न धैर्य, न संगठन, तो मैं मान जाऊँगी; लेकिन जाति-हित के लिए प्राण देनेवालों को बेवक़ूफ़ बनाना मुझसे नहीं सहा जा सकता। विशम्भर के इशारे पर आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो जायँगे, तुममें है जनता के सामने खड़े होने का हौसला? जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीच समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान दे रहे हो। तुम इसे अपने लिए गौरव की बात समझो, मैं नहीं समझती।

आनंद तिलमिला उठा। बोला—तुम तो पक्की क्रांतिकारिणी हो गई इस वक्त।

रूपमणि ने उसी आवेश में कहा—अगर सच्ची-खरी बातों में तुम्हें क्रांति की गंध मिले, तो मेरा दोष नहीं।

'आज विशम्भर को बधाई देने के लिए जलसा ज़रूर होगा। क्या तुम उसमें जाओगी?'

रूपमणि ने उग्र भाव से कहा—ज़रूर जाऊँगी, बोलूँगी भी और कल रानीगंज भी चली जाऊँगी। विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते-जी बुझने न पायेगा।

आनंद ने डूबते हुए आदमी की तरह तिनके का सहारा लिया—अपनी अम्माँ और दादा से पूछ लिया है?

'पूछ लूँगी।'

'और वह तुम्हें अनुमति भी दे देंगे ?'

'सिद्धान्त के विषय में अपनी आत्मा का आदेश सर्वोपरि होता है।'

'अच्छा, यह नई बात मालूम हुई !'

यह कहता हुआ आनंद उठ खड़ा हुआ और बिना हाथ मिलाये कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, कि अब गिरा, अब गिरा।

होली का उपहार

मैकूलाल अमरकान्त के घर शतरंज खेलने आये, तो देखा वह कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। पूछा—कहीं बाहर की तैयारी कर रहे हो क्या भाई ? फुरसत हो, तो आओ आज दो-चार बाज़ियाँ हो जायँ।

अमरकान्त ने सन्दूक में आईना-कंघी रखते हुए कहा—नहीं भाई, आज तो बिल्कुल फुरसत नहीं है। कल ज़रा ससुराल जा रहा हूँ। सामान-आमान ठीक कर रहा हूँ।

मैकू—तो आज ही से क्या तैयारी करने लगे। चार क़दम तो है। शायद पहली ही बार जा रहे हो।

अमर—हाँ यार, अभी एक बार भी नहीं गया। मेरी इच्छा तो अभी जाने की न थी ; पर ससुरजी आग्रह कर रहे हैं।

मैकू—तो कल शाम को उठना और चल देना। आध घंटे में तो पहुँच जाओगे।

अमर—मेरे हृदय में तो अभी से न-जाने कैसी धड़कन हो रही है। अभी तक तो कल्पना में पत्नी-मिलन का आनन्द लेता था। अब वह कल्पना प्रत्यक्ष हुई जाती है। कल्पना सुन्दर होती है, प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने।

मैकू—तो कोई सौग़ात ले ली है? खाली हाथ न जाना, नहीं मुँह ही सीधा न होगा।

अमरकान्त ने कोई सौग़ात न लिया था। इस कला में अभी अभ्यस्त न हुए थे।

मैकू बोला—तो अब ले लो भले आदमी। पहली बार जा रहे हो, भला वह दिल में क्या कहेंगी।

अमर—तो क्या चीज़ ले जाऊँ? मुझे तो इसका ख़याल ही नहीं आया। कोई ऐसी चीज़ बताओ, जो कम ख़र्च और बालानशीन हो; क्योंकि घर भी रुपए भेजने हैं, दादा ने रुपए माँगे हैं।

मैकू मा-बाप से अलग रहता था। व्यंग करके बोला – जब दादा ने रुपए माँगे हैं, तो भला कैसे टाल सकते हो। दादा का रुपए माँगना कोई मामूली बात तो नहीं है।

अमरकान्त ने व्यंग्य न समझकर कहा – हाँ, इसी वजह से तो मैंने होली के लिए कपड़े भी नहीं बनवाये। मगर जब कोई सौग़ात ले जाना भी ज़रूरी है, तो कुछ न कुछ लेना ही पड़ेगा। हलके दामों की कोई चीज़ बतलाओ।

दोनो मित्रों में विचार-विनिमय होने लगा। विषय बड़े ही महत्त्व का था। उसी आधार पर भावी दाम्पत्य-जीवन सुखमय या इसके प्रति-कूल हो सकता था। पहले दिन बिल्ली को मारना अगर जीवन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है, तो पहला उपहार क्या कम महत्त्व

का विषय है ? देर तक बहस होती रही ; पर कोई निश्चय न हो सका ।

उसी वक़्त एक पारसी महिला एक नए फ़ैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गई । मैकूलाल ने कहा—अगर ऐसी एक साड़ी ले लो, तो वह ज़रूर खुश हो जायँ । कितना सूफ़ियाना रंग है और वज़ा कितनी निराली ! मेरी आँखों में तो जैसे बस गई । हाशिम की दूकान से ले लो । २५) में आ जायगी ।

अमरकांत भी उस साड़ी पर मुग्ध हो रहा था । वधू यह साड़ी देखकर कितनी प्रसन्न होगी और उसके गोरे रंग पर यह कितनी खिलेगी, वह इसी कल्पना में मग्न था । बोला—हाँ, यार पसन्द तो मुझे भी है ; लेकिन हाशिम की दूकान पर तो पिकेटिंग हो रही है ।

'तो होने दो । ख़रीदनेवाले ख़रीदते ही हैं । अपनी इच्छा है । जो चीज़ चाहते हैं, ख़रीदते हैं, किसी के बाबा का साझा है ।'

अमरकान्त ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—यह तो सत्य है ; लेकिन मेरे लिए स्वयंसेवकों के बीच से दूकान में जाना संभव नहीं है । फिर तमाशाइयों की हरदम भीड़ भी तो लगी रहती है ।

मैकूलाल ने मानो उसकी कायरता पर दया करके कहा—तो पीछे के द्वार से चले जाना । वहाँ पिकेटिंग नहीं होती ।

'किसी देशी दूकान पर न मिल जायगी ?'

'हाशिम की दूकान के सिवा और कहीं न मिलेगी ।'

(२)

संध्या हो गई थी । अमीनाबाद में आकर्षण का उदय हो गया था । सूर्य की प्रतिभा विद्युत-प्रकाश के बुलबुलों में अपनी स्मृति छोड़ गई थी ।

अमरकान्त दबे पाँव हाशिम की दूकान के सामने पहुँचा । स्वयं-

सेवकों का धरना भी था और तमाशाइयों की भीड़ भी। उसने दो-तीन बार अन्दर जाने के लिए कलेजा मज़बूत किया; पर फुटपाथ तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

मगर साड़ी लेना ज़रूरी था। वह उसकी आँखों में खुब गई थी। वह उसके लिए पागल हो रहा था।

आख़िर उसने पिछवाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। जाकर देखा, अभी तक वहाँ कोई वालंटियर न था। जल्दी से एक सपाटे में भीतर चला गया। और बीस-पचीस मिनट में उसी नमूने की एक साड़ी लेकर फिर उसी द्वार पर आया; पर इतनी ही देर में परिस्थिति बदल चुकी थी। तीन स्वयंसेवक आ पहुँचे थे। अमरकान्त एक मिनट तक द्वार पर दुबधे में खड़ा रहा। फिर तीर की तरह निकल भागा और अन्धाधुन्ध भागता चला गया। दुर्भाग्य की बात! एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई चली आ रही थी। अमरकान्त उससे टकरा गया। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी गालियाँ देने—आँखों में चर्बी छा गई है क्या? देखकर नहीं चलते? यह जवानी ढै जायगी एक दिन!

अमरकान्त के पाँव आगे न जा सके। बुढ़िया को उठाया और उससे क्षमा माँग रहे थे कि तीनो स्वयंसेवकों ने पीछे से आकर उन्हें घेर लिया। एक स्वयंसेवक ने साड़ी के पैकेट पर हाथ रखते हुए कहा—बिल्लाती कपड़ा ले जाये का हुक्म नहीं ना। बुलाइत है, तो सुनत नाहीं हो!

दूसरा बोला—आप तो ऐसे भागे, जैसे कोई चोर भागे।

तीसरा—हज़ारन मनई पकड़-पकड़ करके जेहल में भरा जात अहैं, देश में आग लागी है, और इनका मन बिल्लाती माल से नहीं भरा।

अमरकान्त ने पैकेट को दोनो हाथों से मज़बूत करके कहा—तुम लोग मुझे जाने दोगे या नहीं ?

पहले स्वयंसेवक ने पैकेट पर हाथ बढ़ाते हुए कहा—जाये कसत देई। बिल्लाती कपड़ा लेके तुम इहाँ से कबौं नहीं जाय सकत हौ।

अमरकान्त ने पैकेट को एक झटके में छुड़ाकर कहा—तुम मुझे हर्गिज़ नहीं रोक सकते !

उन्होंने आगे क़दम बढ़ाया ; मगर दो स्वयंसेवक तुरंत उनके सामने लेट गये। अब बेचारे बड़ी मुशकिल में फँसे। जिस विपत्ति से बचना चाहते थे, वह ज़बरदस्ती गले पड़ गई। एक मिनट में बीसों आदमी जमा हो गये और चारो तरफ़ से उन पर टिप्पणियाँ होने लगीं।

'कोई जंटुलमैन मालूम होते हैं।'

'यह लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छिः ! इस दूकान पर से रोज़ दस-पाँच आदमी गिरफ़्तार होते हैं ; पर आपको इसकी क्या परवाह !'

'कपड़ा छीन लो और कह दो जाकर पुलिस में रपट करें।'

बेचारे बेड़ियाँ-सी पहने खड़े थे। कैसे गला छूटे, इसका कोई उपाय न सूझता था। मैकूलाल पर क्रोध आ रहा था कि उसी ने यह रोग उनके सिर मढ़ा। उन्हें तो किसी सौग़ात की फ़िक्र न थी। आये वहाँ से कि कोई सौग़ात ले लो।

कुछ देर तक लोग टिप्पणियाँ ही करते रहे, फिर छीन-झपट शुरू हुई। किसी ने सिर से टोपी उड़ा दी। उसकी तरफ़ लपके, तो एक ने साड़ी का पैकेट हाथ से छीन लिया। फिर वह हाथों-हाथ ग़ायब हो गई।

अमरकान्त ने बिगड़कर कहा—मैं जाकर पुलीस में रिपोर्ट करता हूँ।

एक आदमी ने कहा—हाँ-हाँ, ज़रूर जाओ और हम सभी को फाँसी चढ़वा दो!

सहसा एक युवती खद्दर की साड़ी पहने एक थैला लिये आ निकली। यहाँ यह हुड़दंगा देखकर बोली—क्या मुआमला है? तुम लोग क्यों एक भले आदमी को दिक़ कर रहे हो?

अमरकान्त की जान में जान आई। उसके पास जाकर फ़रियाद करने लगे—ये लोग मेरे कपड़े छीनकर भाग गये हैं और उन्हें ग़ायब कर दिया। मैं इसे डाका कहता हूँ। यह चोरी है। इसे मैं न सत्याग्रह कहता हूँ, न देश-प्रेम।

युवती ने दिलासा दिया—घबड़ाइये नहीं। आप के कपड़े मिल जायँगे। होंगे तो इन्हीं लोगों के पास। कैसे कपड़े थे?

एक स्वयंसेवक बोला—बहनजी, इन्होंने हाशिम की दूकान से कपड़े लिये हैं।

युवती—किसी के दूकान से लिये हों, तुम्हें उनके हाथ से कपड़ा छीनने का कोई अधिकार नहीं है। आपके कपड़े वापस ला दो। किसके पास हैं?

एक क्षण में अमरकान्त की साड़ी जैसे हाथों-हाथ गई थी, वैसे ही हाथों-हाथ वापस आ गई। ज़रा देर में भीड़ भी ग़ायब हो गई। स्वयंसेवक भी चले गये। अमरकान्त ने युवती को धन्यवाद देते हुए कहा—आप इस समय न आ गई होतीं, तो इन लोगों ने धोती तो ग़ायब कर ही दी थी, शायद मेरी खबर भी लेते।

युवती ने सरल भर्त्सना के भाव से कहा—जन-सम्मति का लिहाज़

सभी को करना पड़ता है ; मगर आपने इस दूकान से कपड़े लिये ही क्यों ? जब आप देख रहे हैं कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आपने न माना। जो लोग समझकर भी नहीं समझते उन्हें कैसे कोई समझाये।

अमरकान्त इस समय लज्जित हो गये और अपने मित्रों में बैठकर वे जो स्वेच्छा के राग अलापा करते थे, वह भूल गये। बोले—मैंने अपने लिए नहीं ख़रीदे हैं, एक महिला की फ़रमाइश थी, इसलिए मजबूर था।

'उन महिला को आपने समझाया नहीं ?'

'आप समझातीं, तो शायद समझ जातीं, मेरे समझाने से तो न समझीं।'

'कभी अवसर मिला, तो ज़रूर समझाने की चेष्टा करूँगी। पुरुषों की नकेल महिलाओं के हाथ में है ! आप किस मुहल्ले में रहते हैं ?'

'सआदतगंज में।'

'शुभ नाम ?'

'अमरकान्त।'

युवती ने तुरंत ज़रा-सा घुँघट खींच लिया और सिर झुकाकर संकोच और स्नेह से सने स्वर में बोली—आपकी पत्नी तो आपके घर में नहीं है, उसने फ़रमाइश कैसे की ?

अमरकान्त ने चकित होकर पूछा—आप किस मुहल्ले में रहती हैं ?

'बसियारीमंडी।'

'आपका नाम सुखदादेवी तो नहीं है ?'

'हो सकता है, इस नाम की कई स्त्रियाँ हैं।'

'आपके पिता का नाम ज्वालादत्तजी है।'

'उस नाम के भी कई आदमी हो सकते हैं।'

अमरकान्त ने जेब से दियासलाई निकाली और वहीं सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया।

सुखदा ने कहा—आप कल आयेंगे ?

अमरकान्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—नहीं सुखदा, अब जब तक इसका प्रायश्चित्त न कर लूँगा, न आऊँगा।

सुखदा कुछ और कहने जा रही थी कि अमरकान्त तेज़ी से क़दम बढ़ाकर दूसरी तरफ़ चले गये।

[३]

आज होली है ; मगर आज़ादी के मतवालों के लिए न होली है न वसन्त। हाशिम की दूकान पर आज भी पिकेटिंग हो रही है और तमाशाई आज भी जमा हैं। आज के स्वयंसेवकों में अमरकान्त भी खड़े पिकेटिंग कर रहे हैं। उनकी देह पर खद्दर का कुरता है और खद्दर की धोती। हाथ में तिरंगा झंडा लिये हैं।

एक स्वयंसेवक ने कहा—पानीदारों को यों बात लगती है। कल तुम क्या थे, आज क्या हो। सुखदा देवी न आ जातीं, तो बड़ी मुश्किल होती।

अमर ने कहा—मैं उसके लिए तुम लोगों को धन्यवाद देता हूँ। नहीं मैं आज यहाँ न होता।

'आज तुम्हें न आना चाहिये था। सुखदा बहन तो कहती थीं, मैं आज उन्हें न जाने दूँगी।

'कल के अपमान के बाद अब मैं उन्हें मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ। जब वह रमणी होकर इतना कर सकती हैं, तो हम तो हर तरह के कष्ट

उठाने के लिए बने ही हैं। ख़ास कर जब बाल-बच्चों का भार सिर पर नहीं है।'

उसी वक़्त पुलीस की लॉरी आई, एक सब-इंस्पेक्टर उतरा और स्वयंसेवकों के पास आकर बोला—मैं तुम लोगों को गिरफ़्तार करता हूँ।

'वन्दे मातरम्' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो-दो क़दम और आगे बढ़ आये। स्वयंसेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कराते हुए लारी में जा बैठे। अमरकान्त सबसे आगे थे। लॉरी चलना ही चाहती थी, कि सुखदा किसी तरफ़ से दौड़ी हुई आ गई। उसके हाथ में एक पुष्पमाला थी। लॉरी का द्वार खुला था। उसने ऊपर चढ़कर वह माला अमरकान्त के गले में डाल दी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूँदें टपक पड़ीं! लॉरी चली गई। यही होली थी, यही होली का आनन्द-मिलन था।

उसी वक़्त सुखदा दूकान पर खड़ी होकर बोली—विलायती कपड़े ख़रीदना और पहनना देश-द्रोह है!

अनुभव

प्रियतम को एक वर्ष की सजा हो गई। और अपराध केवल इतना था, कि तीन दिन पहले जेठ की तपती दोपहरी में उन्होंने राष्ट्र के कई सेवकों का शर्बत-पान से सत्कार किया था। मैं उस वक्त अदालत में खड़ी थी। कमरे के बाहर सारे नगर की राजनैतिक चेतना किसी बन्दी पशु की भाँति खड़ी चीत्कार कर रही थी। मेरे प्राणधन हथ-कड़ियों से जकड़े हुए लाये गये। चारो ओर सन्नाटा छा गया। मेरे भीतर हा-हाकार मचा हुआ था, मानो प्राण पिघला जा रहा हो। आवेश की लहरें-सी उठ-उठकर समस्त शरीर को रोमांचित किये देती थीं। ओह! इतना गर्व मुझे कभी न हुआ था। वह अदालत, कुरसी पर बैठा हुआ अँग्रेज़ अफसर, लाल ज़रीदार पगड़ियाँ बाँधे हुए पुलीस के कर्मचारी, सब मेरी आँखों में तुच्छ जान पड़ते थे। बार-बार जी में आता था, दौड़कर जीवनधन के चरणों से लिपट

जाऊँ और उसी दशा में प्राण त्याग दूँ। कितनी शान्त, अविचलित तेज और स्वाभिमान से प्रदीप्त मूर्ति थी। ग्लानि, विषाद या शोक की छाया भी न थी। नहीं उन ओठों पर एक स्फूर्ति से भरी हुई, मनोहारिणी, ओजस्वी मुस्कान थी। इस अपराध के लिए एक वर्ष का कठिन कारावास! वाह रे न्याय! तेरी बलिहारी है। मैं ऐसे हज़ार अपराध करने को तैयार थी। प्राणनाथ ने चलते समय एक बार मेरी ओर देखा, कुछ मुसकिराये, फिर उनकी मुद्रा कठोर हो गई। अदालत से लौटकर मैंने पाँच रुपए की मिठाई मँगवाई और स्वयंसेवकों को बुलाकर खिलाया। और सन्ध्या समय मैं पहली बार कांग्रेस के जलसे में शरीक हुई—शरीक ही नहीं हुई, मंच पर जाकर बोली और सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ले ली। मेरी आत्मा में इतनी शक्ति कहाँ से आ गई, नहीं कह सकती। सर्वस्व लुट जाने के बाद फिर किसकी शंका और किसका डर। विधाता का कठोर से कठोर आघात भी अब मेरा क्या अहित कर सकता था।

(२)

दूसरे दिन मैंने दो तार दिये। एक पिताजी को, दूसरा ससुरजी को। ससुरजी पेंशन पाते थे। पिताजी जंगल के महकमें में अच्छे पद पर थे; पर सारा दिन गुज़र गया, तार का जवाब नदारद! दूसरे दिन भी कोई जवाब नहीं। तीसरे दिन दोनो महाशयों के पत्र आये। दोनो जामे से बाहर थे। ससुरजी ने लिखा—आशा थी तुम लोग बुढ़ापे में मेरा पालन करोगे। तुमने उस आशा पर पानी फेर दिया। क्या अब चाहती हो, मैं भिक्षा माँगूँ! मैं सरकार से पेंशन पाता हूँ। तुम्हें आश्रय देकर मैं अपनी पेंशन से हाथ नहीं धो सकता। पिताजी के शब्द इतने कठोर न थे; पर भाव लगभग ऐसा ही था। इसी साल उन्हें ग्रेड मिलने-

वाला था। वह मुझे बुलायेंगे, तो सम्भव है ग्रेड से वंचित होना पड़े। हाँ, वह मेरी सहायता मौखिक रूप से करने को तैयार थे। मैंने दोनो पत्र फाड़कर फेंक दिये और फिर उन्हें कोई पत्र न लिखा। हा स्वार्थ! तेरी माया कितनी प्रबल है! अपना ही पिता, केवल स्वार्थ में बाधा पड़ने के भय से, लड़की की तरफ़ से इतना निर्दय हो जाय। अपना ही ससुर अपनी बहू की ओर से इतना उदासीन हो जाय! मगर अभी मेरी उम्र ही क्या है। अभी तो सारी दुनिया देखने को पड़ी है।

अब तक मैं अपने विषय में निश्चिन्त थी; लेकिन अब यह नई चिन्ता सवार हुई। इस निर्जन घर में, निराधार, निराश्रय, कैसे रहूँगी; मगर जाऊँगी कहाँ! अगर मर्द होती, तो कांग्रेस के आश्रम में चली जाती या कोई मजूरी कर लेती। मेरे पैरों में तो नारीत्व की बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं। अपनी रक्षा की इतनी चिन्ता न थी, जितनी अपने नारीत्व की रक्षा की। अपनी जान की फ़िक्र न थी; पर नारीत्व की ओर किसी की आँख भी न उठनी चाहिये।

किसी की आहट पाकर मैंने नीचे देखा। दो आदमी खड़े थे। जी में आया पूछूँ तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़े हो; मगर फिर ख़याल आया, मुझे यह पूछने का क्या हक़! आम रास्ता है। जिसका जी चाहे खड़ा हो।

पर मुझे खटका हो गया। उस शंका को किसी तरह दिल से न निकाल सकती थी! वह एक चिंगारी की भाँति हृदय के एक क्षेत्र में समा गई थी।

गर्मी से देह फुँकी जाती थी; पर मैंने कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया। घर में एक बड़ा-सा चाकू था। उसे निकालकर सिरहाने रख लिया। वह शंका सामने बैठी घूरती हुई मालूम होती थी।

किसी ने पुकारा। मेरे रोयें खड़े हो गये। मैंने द्वार से कान लगाया। कोई मेरी कुंडी खटखटा रहा था। कलेजा धक्-धक् करने लगा। वही दोनो बदमाश होंगे। क्यों कुण्डी खड़खड़ा रहे हैं। मुझसे क्या काम है। मुझे झुँझलाहट आ गई। मैंने द्वार खोला और छज्जे पर खड़ी होकर ज़ोर से बोली– कौन कुंडी खड़खड़ा रहा है?

आवाज सुनकर मेरी शंका शान्त हो गई। कितना ढारस हो गया! यह बाबू ज्ञानचन्द थे। मेरे पति के मित्रों में इनसे ज्यादा सज्जन दूसरा नहीं है। मैंने नीचे जाकर द्वार खोल दिया। देखा तो एक स्त्री भी थी। यह मिसेज़ ज्ञानचन्द थीं। वह मुझसे बड़ी थीं। पहले-पहल मेरे घर आई थीं। मैंने उनके चरण स्पर्श किये। हमारे यहाँ मित्रता मर्दों ही तक रहती है। औरतों तक नहीं जाने पाती।

दोनो जने ऊपर आये। ज्ञान बाबू एक स्कूल में मास्टर हैं। बड़े ही उदार, विद्वान्, निष्कपट; पर आज मुझे मालूम हुआ कि उनकी पथ-प्रदर्शिका उनकी स्त्री हैं। वह दुहरे बदन की, प्रतिभाशाली महिला थीं। चेहरे पर ऐसा रोब था, मानो कोई रानी हों। सिर से पाँव तक गहनों से लदी हुई। मुख सुन्दर न होने पर भी आकर्षक था। शायद मैं उन्हें कहीं और देखती, तो मुँह फेर लेती। गर्व की सजीव प्रतिमा थीं; पर बाहर जितनी कठोर, भीतर उतनी ही दयालु थीं।

'घर कोई पत्र लिखा?'—यह प्रश्न उन्होंने कुछ हिचकते हुए किया।

मैंने कहा—हाँ, लिखा था।

'कोई लेने आ रहा है?'

'जी नहीं। न पिताजी अपने पास रखना चाहते हैं, न ससुरजी।'

'तो फिर?'

'फिर क्या, अभी तो यहीं पड़ी हूँ।'

'तो मेरे घर क्यों नहीं चलतीं। अकेले तो इस घर में मैं न रहने दूँगी। खुफ़िया के दो आदमी इस वक्त भी डटे हुए हैं।'

'मैं पहले ही समझ गई थी, दोनो खुफ़िया के आदमी होंगे।'

ज्ञान बाबू ने पत्नी की ओर देखकर, मानो उनकी आज्ञा से, कहा—तो मैं जाकर ताँगा लाऊँ?

देवीजी ने इस तरह देखा, मानो कह रही हों, क्या अभी तुम यहीं खड़े हो?

मास्टर साहब चुपके से द्वार की ओर चले।

'ठहरो' देवीजी बोलीं—कै ताँगे लाओगे?

'कै!' मास्टर साहब घबड़ा गये।

'हाँ कै! एक ताँगे पर तो तीन सवारियाँ ही बैठेंगी। सन्दूक-बिछावन, बरतन-भाड़े क्या मेरे सिर पर जायँगे।'

'तो दो लेता आऊँगा।'—मास्टर साहब डरते-डरते बोले।

'एक ताँगे में कितना सामान भर दोगे?'

'तो तीन लेता आऊँ?'

'अरे तो जाओगे भी। जरा-सी बात के लिए घंटा भर लगा दिया।'

मैं कुछ कहने न पाई थी, कि ज्ञान बाबू चल दिये। मैंने सकुचाते हुए कहा—बहन, तुम्हें मेरे जाने से कष्ट होगा और...

देवीजी ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—हाँ, होगा तो अवश्य। तुम दोनो जून में पाव भर आटा खाओगी, कमरे के एक कोने में अड्डा जमा लोगी, सिर में दो-तीन आने का तेल डालोगी। यह क्या थोड़ा कष्ट है।

मैंने झेंपते हुए कहा—आप तो मुझे बना रही हैं।

देवीजी ने सहृदय भाव से मेरा कंधा पकड़कर कहा—जब तुम्हारे बाबूजी लौट आयें, तो मुझे भी अपने घर मेहमान रख लेना। मेरा घाटा पूरा हो जायगा। अब तो राजी हुई। चलो असबाब बाँधो। खाट-बाट कल मँगवा लेंगे।

(३)

मैंने ऐसी सहृदय, उदार, मीठी बातें करनेवाली स्त्री नहीं देखी। मैं उनकी छोटी बहन होती, तो भी शायद इससे अच्छी तरह न रखतीं। चिन्ता या क्रोध को तो जैसे उन्होंने जीत लिया हो। सदैव उनके मुख पर मधुर विनोद खेला करता था। कोई लड़का-बाला न था; पर मैंने उन्हें कभी दुःखी नहीं देखा। ऊपर के काम के लिए एक लौंडा रख लिया था। भीतर का सारा काम खुद करतीं। इतना कम खाकर और इतनी मेहनत करके वह कैसे इतनी हृष्ट-पुष्ट थीं, मैं नहीं कह सकती। विश्राम तो जैसे उनके भाग्य ही में नहीं लिखा था। जेठ की दुपहरी में भी न लेटती थीं। हाँ, मुझे कुछ न करने देतीं, उस पर जब देखो कुछ खिलाने को सिर पर सवार। मुझे यहाँ बस यही एक तकलीफ़ थी।

मगर आठ ही दिन गुजरे थे, कि एक दिन मैंने उन्हीं दोनो खुफियों को नीचे बैठे देखा। मेरा माथा ठनका। यह अभागे यहाँ भी मेरे पीछे पड़े हैं। मैंने तुरंत बहनजी से कहा—वह दोनो बदमाश यहाँ भी मँडरा रहे हैं।

उन्होंने हिकारत से कहा—कुत्ते हैं। फिरने दो।

मैं चिन्तित होकर बोली—कोई स्वाँग न खड़ा करें।

उसी बेपरवाही से बोलीं—भूँकने के सिवा और क्या कर सकते हैं ?

मैंने कहा—काट भी तो सकते हैं।

हँसकर बोलीं—इसके डर से कोई भाग तो नहीं जाता।

मगर मेरी दाल में मक्खी पड़ गई। बार-बार छज्जे पर जाकर उन्हें टहलते देख आती। यह सब क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं? आखिर मैं नौकरशाही का क्या बिगाड़ सकती हूँ। मेरी सामर्थ्य ही क्या है। क्या यह सब इस तरह मुझे यहाँ से भगाने पर तुले हैं। इससे उन्हें क्या मिलेगा? यही तो कि मैं मारी-मारी फिरूँ? कितनी नीची तबीयत है!

एक हफ़्ता और गुजर गया। खुफियों ने पिंड न छोड़ा। मेरे प्राण सूखते जाते थे। ऐसी दशा में यहाँ रहना मुझे अनुचित मालूम होता था; पर देवीजी से कुछ कह न सकती थी।

एक दिन शाम को ज्ञान बाबू आये, तो घबड़ाये हुए थे। मैं बरामदे में थी। परवल छील रही थी। ज्ञान बाबू ने कमरे में जाकर देवीजी को इशारे से बुलाया।

देवीजी ने बैठे-बैठे कहा—पहले कपड़े-वपड़े तो उतारो, मुँह-हाथ धोओ, कुछ खाओ, फिर जो कुछ कहना हो, कह लेना।

ज्ञान बाबू को धैर्य कहाँ? पेट में बात की गंध तक न पचती थी। आग्रह से बुलाया। तुमसे तो उठा नहीं जाता। मेरी जान आफ़त में है।

देवी ने बैठे-बैठे कहा—तो कहते क्यों नहीं, क्या कहना है।

'यहाँ आओ।'

'क्या यहाँ कोई और बैठा हुआ है?'

मैं वहाँ से चली। बहन ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं ज़ोर करने

पर भी न छुड़ा सकी। ज्ञान बाबू मेरे सामने न कहना चाहते थे; पर इतना सब्र भी न था, कि जरा देर रुक जाते। बोले—प्रिंसिपल से मेरी लड़ाई हो गई।

देवी ने बनावटी गम्भीरता से कहा—सच! तुमने उसे ख़ूब पीटा न?

'तुम्हें दिल्लगी सूझती है। यहाँ नौकरी जा रही है।'

'जब यह डर था, तो लड़े क्यों?'

'मैं थोड़ा ही लड़ा। उसी ने मुझे बुलाकर डाँटा।'

'बेक़सूर?'

'अब तुमसे क्या कहूँ!'

'फिर वही पर्दा। मैं कह चुकी, यह मेरी बहन है। मैं इससे कोई पर्दा नहीं रखना चाहती।'

'और जो इन्हीं के बारे में कोई बात हो, तो?'

देवीजी ने जैसे पहेली बूझकर कहा—अच्छा समझ गई। कुछ खुफियों का झगड़ा होगा। पुलीस ने तुम्हारे प्रिन्सिपल से शिकायत की होगी।

ज्ञान बाबू ने इतनी आसानी से अपनी पहेली का बूझा जाना स्वीकार न किया।

बोले—पुलीस ने प्रिन्सिपल से नहीं; हाकिम जिला से कहा। उसने प्रिन्सिपल को बुलाकर मुझसे जवाब तलब करने का हुक्म दिया।

देवी ने आभास से कहा—समझ गई। प्रिन्सिपल ने तुमसे कहा होगा, कि उस स्त्री को घर से निकाल दो।

'हाँ, यही समझ लो!'

'तो तुमने क्या जवाब दिया ?'

'अभी कोई जवाब नहीं दिया। वहाँ खड़े-खड़े क्या कहता !'

देवीजी ने उन्हें आड़े हाथों लिया—जिस प्रश्न का एक ही जवाब हो, उसमें सोच-विचार कैसा ?

ज्ञान बाबू सिटपिटाकर बोले—लेकिन कुछ सोचना तो जरूरी था।

देवीजी की त्योरियाँ बदल गईं, आज मैंने पहली बार उनका यह रूप देखा। बोलीं—तुम उस प्रिन्सिपल से जाकर कह दो, मैं उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता और न माने, तो इस्तीफ़ा दे दो। अभी जाओ। लौटकर हाथ-मुँह धोना।

मैंने रोकर कहा—बहन मेरे लिए...

देवी ने डाँट बताई—तू चुप रह, नहीं कान पकड़ लूँगी। तू क्यों बीच में कूदती है। रहेंगे तो साथ रहेंगे। मरेंगे, तो साथ मरेंगे। इस मर्दुवे को मैं क्या कहूँ ! आधी उम्र बीत गई और अभी बात करना न आया। (पति से) खड़े सोच क्या रहे हो ? तुम्हें डर लगता हो, तो मैं जाकर कह आऊँ।

ज्ञान बाबू ने खिसियाकर कहा—तो कल कह दूँगा, इस वक्त कहाँ होगा, कौन जाने।

रात भर मुझे नींद नहीं आई। बाप और ससुर जिसका मुँह नहीं देखना चाहते, उसका यह आदर ! राह की भिखारिन का यह सम्मान ! देवी तू सचमुच देवी है।

दूसरे दिन ज्ञान बाबू चले, तो देवी ने फिर कहा—फैसला करके घर आना। यह न हो कि फिर सोचकर जवाब देने की ज़रूरत पड़े।

ज्ञान बाबू के चले जाने के बाद मैंने कहा—तुम मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रही हो बहनजी। मैं यह कभी नहीं देख सकती, कि मेरे कारण तुम्हें यह विपत्ति झेलनी पड़े।

देवी ने हास्य-भाव से कहा—कह चुकीं या कुछ और कहना है।

'कह चुकी; मगर अभी बहुत कुछ कहूँगी।'

'अच्छा, बता तेरे प्रियतम क्यों जेल गये? इसी लिए तो कि स्वयंसेवकों का सत्कार किया था। स्वयंसेवक कौन हैं? यह हमारी सेना के वीर हैं, जो हमारी लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। स्वयंसेवकों के भी तो बाल-बच्चे होंगे, मा-बाप होंगे, वे भी तो कोई कार-बार करते होंगे; पर देश की लड़ाई लड़ने के लिए उन्होंने सब कुछ लगा दिया है। ऐसे वीरों का सत्कार करने के लिए, जो आदमी जेल में डाल दिया जाय, उसकी स्त्री के दर्शनों से भी आत्मा पवित्र होती है। मैं तुझ पर एहसान नहीं कर रही हूँ, तू मुझ पर एहसान कर रही है।'

मैं इस दया-सागर में डुबकियाँ खाने लगी। बोलती क्या।

शाम को जब ज्ञान बाबू लौटे, तो उनके मुख पर विजय का आनन्द था।

देवी ने पूछा—हार कि जीत?

ज्ञान बाबू ने अकड़कर कहा—जीत! मैंने इस्तीफा दे दिया, तो चक्कर में आ गया। उसी वक्त हाकिम जिला के पास गया। वहाँ न जाने मोटर पर बैठकर दोनो में क्या बातें हुईं। लौटकर मुझसे बोला—आप पोलिटिकल जलसों में तो नहीं जाते?

मैंने कहा—कभी भूलकर भी नहीं।

'कांग्रेस के मेम्बर तो नहीं है?'

मैंने कहा—मेम्बर क्या, मेम्बर का दोस्त भी नहीं।

'कांग्रेस-फंड में चन्दा तो नहीं देते ?'

मैंने कहा—कानी कौड़ी भी कभी नहीं देता।

'तो हमें आपसे कुछ नहीं कहना है। मैं आपका इस्तीफ़ा वापस करता हूँ।'

देवीजी ने मुझे गले लगा लिया।

———

समर-यात्रा

आज सवेरे ही से गाँव में हलचल मची हुई थी। कच्ची झोंपड़ियाँ हँसती हुई जान पड़ती थीं। आज सत्याग्रहियों का जत्था गाँव में आयेगा। कोदई चौधरी के द्वार पर चँदवा तना हुआ है। आटा, घी, तरकारी, दूध, दही जमा किया जा रहा है। सबके चेहरों पर उमंग है, हौसला है, आनन्द है। वही बिन्दा अहीर, जो दौरे के हाकिमों के पड़ाव पर पाव-पाव-भर दूध के लिए मुँह छिपाता फिरता था, आज दूध और दही के दो मटके अहिराने से बटोरकर रख गया है। कुम्हार, जो घर छोड़कर भाग जाया करता था, मिट्टी के बर्तनों का अटम लगा गया है। गाँव के नाई-कहार सब आप ही आप दौड़े चले आ रहे हैं। अगर कोई प्राणी दुखी है, तो वह नोहरी बुढ़िया है। वह अपनी झोंपड़ी के द्वार पर बैठी हुई अपनी पचहत्तर साल की बूढ़ी, सिकुड़ी हुई आँखों से यह समारोह देख रही है और पछता रही है। उसके पास

क्या है, जिसे लेकर कोदई के द्वार पर जाय और कहे—मैं यह लाई हूँ। वह तो दानों को मुहताज है।

मगर नोहरी ने अच्छे दिन भी देखे हैं। एक दिन उसके पास धन, जन, सब कुछ था। गाँव पर उसी का राज था। कोदई को उसने हमेशा नीचे दबाये रखा। वह स्त्री होकर भी पुरुष थी। उसका पति घर में सोता था, वह खेत में सोने जाती थी। मामले-मुक़दमे की पैरवी खुद ही करती थी। लेना-देना सब उसी के हाथों में था ; लेकिन वह सब कुछ विधाता ने हर लिया ; न धन रहा, न जन रहे—अब उनके नामों को रोने के लिए वही बाकी थी। आँखों से सूझता न था, कानों से सुनाई न देता था, जगह से हिलना मुश्किल था। किसी तरह ज़िन्दगी के दिन पूरे कर रही थी और उधर कोदई के भाग उदय हो गये थे। अब चारों ओर कोदई की पूछ थी—पहुँच थी। आज यह जलसा भी कोदई के द्वार पर हो रहा है। नोहरी को अब कौन पूछेगा। यह सोचकर उसका मनस्वी हृदय मानो किसी पत्थर से कुचल उठा। हाय! अगर भगवान् ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोंपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती, कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनवाती और जब वह लोग खा चुकते, तो अँजुली भर रुपए उनकी भेंट कर देती।

उसे वह दिन याद आया, जब वह अपने बूढ़े पति को लेकर यहाँ से बीस कोस महात्माजी के दर्शन करने गई थी। वह उत्साह, वह सात्त्विक प्रेम, वह श्रद्धा, आज उसके हृदय में आकाश के मटियाले मेघों की भाँति उमड़ने लगी।

कोदई ने आकर पोपले मुँह से कहा—भाभी, आज महात्माजी का जत्था आ रहा है, तुम्हें भी कुछ देना है?

नोहरी ने चौधरी को कटार भरी हुई आँखों से देखा। निर्दयी!

मुझे जलाने आया है। मुझे नीचा दिखाना चाहता है। जैसे आकाश पर चढ़कर बोली—मुझे जो कुछ देना है, वह उन्हीं लोगों को दूँगी। तुम्हें क्यों दिखाऊँ!

कोदई ने मुसकिराकर कहा—हम किसी से कहेंगे नहीं, सच कहते हैं भाभी। निकालो वह पुरानी हाँड़ी! अब किस दिन के लिए रखे हुए हो। किसी ने कुछ नहीं दिया। गाँव की लाज कैसे रहेगी?

नोहरी ने कठोर दीनता के भाव से कहा—जले पर नमक न छिड़को, देवरजी! भगवान ने दिया होता, तो तुम्हें कहना न पड़ता। इसी द्वार पर एक दिन साधु-सन्त, जोगी-जती, हाकिम-सूबा सभी आते थे; मगर सब दिन बराबर नहीं जाते!

कोदई लज्जित हो गया। उसके मुख की झुर्रियाँ मानो रेंगने लगीं। बोला—तुम तो हँसी में बिगड़ जाती हो भाभी! मैंने तो इसलिए कहा था कि पीछे से तुम यह न कहने लगो—मुझसे तो किसी ने कुछ कहा ही नहीं।

यह कहता हुआ वह चला गया। नोहरी वहीं बैठी उसकी ओर ताकती रही। उसका वह व्यंग्य सर्प की भाँति उसके सामने बैठा हुआ मालूम होता था।

(२)

नोहरी अभी बैठी हुई थी कि शोर मचा—जत्था आ गया! पच्छिम में गर्द उड़ती हुई नजर आ रही थी, मानो पृथ्वी उन यात्रियों के स्वागत में अपने रज-रत्नों की वर्षा कर रही हो। गाँव के सब स्त्री-पुरुष सब काम छोड़-छोड़कर उनका अभिवादन करने चले। एक क्षण में तिरंगी पताका हवा में फहराती दिखाई दी, मानो स्वराज्य ऊँचे आसन पर बैठा हुआ सबको आशीर्वाद दे रहा हो।

स्त्रियाँ मंगल-गान करने लगीं। ज़रा देर में यात्रियों का दल साफ़ नज़र आने लगा। दो-दो आदमियों की क़तारें थीं। हरएक की देह पर खद्दर का कुर्त्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बग़ल में थैला लटकता हुआ, दोनो हाथ खाली, मानो स्वराज्य का आलिंगन करने को तैयार हों। फिर उनका कंठ-स्वर सुनाई देने लगा। उनके मरदाने गलों से एक क़ौमी तराना निकल रहा था। गर्म, गहरा, दिलों में स्फूर्ति डालने-वाला—

'एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फ़र्द थे,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।
एक दिन वह था कि अपनी शान पर देते थे जान,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।'

गाँववालों ने कई क़दम आगे बढ़कर यात्रियों का स्वागत किया। बेचारों के सिरों पर धूल जमी हुई थी, ओंठ सूखे हुए, चेहरे सँवलाये; पर आँखों में जैसे आज़ादी की ज्योति चमक रही थी।

स्त्रियाँ गा रही थीं, बालक उछल रहे थे और पुरुष अपने अँगोछों से यात्रियों को हवा कर रहे थे। इस समारोह में नोहरी की ओर किसी का ध्यान न गया, जो अपनी लठिया पकड़े हुए सबके पीछे सजीव आशीर्वाद बनी खड़ी थी। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं, मुख से गौरव की ऐसी झलक आ रही थी, मानो वह कोई रानी है, मानो यह सारा गाँव उसका है, ये सभी युवक उसके बालक हैं। अपने मन में उसने ऐसी शक्ति, ऐसे विकास, ऐसे उत्थान का अनुभव कभी न किया था।

सहसा उसने लाठी फेंक दी और भीड़ को चीरती हुई यात्रियों के सामने आ खड़ी हुई, जैसे लाठी के साथ ही उसने बुढ़ापे और दुःख के

बोझ को भी फेंक दिया हो। वह एक पल अनुरक्त आँखों से आज़ादी के सैनिकों की ओर ताकती रही, मानो उनकी शक्ति को अपने अन्दर भर रही हो, तब वह नाचने लगी, इस तरह नाचने लगी, जैसे कोई सुन्दरी नवयौवना प्रेम और उल्लास के मद से विह्वल होकर नाचे। लोग दो-दो, चार-चार क़दम पीछे हट गये, छोटा-सा आँगन बन गया और उस आँगन में वह बुढ़िया अपना अतीत नृत्य-कौशल दिखाने लगी। इस अलौकिक आनन्द के रेले में वह अपना सारा दुःख और सन्ताप भूल गई। उसके जीर्ण अंगों में जहाँ सदा वायु का प्रकोप रहता था, वहाँ न जाने इतनी चपलता, इतनी लचक, इतनी फुरती कहाँ से आ गई थी! पहले कुछ देर तो लोग मज़ाक से उसकी ओर ताकते रहे, जैसे बालक बन्दर का नाच देखते हैं, फिर अनुराग के इस पावन प्रवाह ने सभी को मतवाला कर दिया। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि सारी प्रकृति एक विराट्, व्यापक नृत्य की गोद में खेल रही है।

कोदई ने कहा—बस करो भाभी, बस करो।

नोहरी ने थिरकते हुए कहा—खड़े क्यों हो, आओ न, जरा देखूँ कैसा नाचते हो!

कोदई बोले—अब बुढ़ापे में क्या नाचूँ भाभी?

नोहरी ने ज़रा रुककर कहा—क्या तुम आज भी बूढ़े हो? मेरा बुढ़ापा तो जैसे भाग गया। इन वीरों को देखकर भी तुम्हारी छाती नहीं फूलती! हमारा ही दुख-दर्द हरने के लिए तो इन्होंने यह परन ठाना है। इन्हीं हाथों से हाकिमों की बेगार बजाई है, इन्हीं कानों से उनकी गालियाँ और घुड़कियाँ सुनी हैं। अब तो उस जोर-जुलुम का नाश होगा—हम और तुम क्या अभी बूढ़े होने जोग थे? हमें पेट की आग

ने जलाया है। बोलो, ईमान से, यहाँ इतने आदमी हैं, किसी ने इधर छः महीने से पेट भर रोटी खाई है ? घी किसी को सूँघने को मिला है ? कभी नींद भर सोये हो ? जिस खेत का लगान तीन रुपए देते थे, अब उसी के नौ-दस देते हो। क्या धरती सोना उगलेगी ? काम करते-करते छाती फट गई। हमी हैं कि इतना सहकर भी जीते हैं। दूसरा होता, तो या तो मार डालता, या मर जाता। धन्य हैं महात्मा और उनके चेले कि दीनों का दुःख समझते हैं, उनके उद्धार का जतन करते हैं। और तो सभी हमें पीसकर हमारा रक्त निकालना जानते हैं।

यात्रियों के चेहरे चमक उठे। हृदय खिल उठे। प्रेम में डूबी हुई ध्वनि निकली—

'एक दिन वह था कि पारस थी यहाँ की सरज़मीन,
एक दिन यह है कि यों बे दस्तोपा कोई नहीं।'

(३)

कोदई के द्वार पर मशालें जल रही थीं। कई गाँवों के आदमी जमा हो गये थे। यात्रियों के भोजन कर लेने के बाद सभा शुरू हुई। दल के नायक ने खड़े होकर कहा—

भाइयो, आपने आज हम लोगों का जो आदर-सत्कार किया, उससे हमें यह आशा हो रही है कि हमारी बेड़ियाँ जल्द ही कट जायँगी। मैंने पूरब और पश्चिम के बहुत-से देशों को देखा है, और मैं तजरबे से कहता हूँ कि आप में जो सरलता, जो ईमानदारी, जो श्रम और धर्मबुद्धि है, वह संसार के और किसी देश में नहीं। मैं तो यही कहूँगा कि आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। आपको भोग-विलास से मतलब नहीं, नशा-पानी से मतलब नहीं, अपना काम करना, और अपनी दशा पर सन्तोष रखना, यह आपका आदर्श है ; लेकिन आपका

यही देवत्व, आपका यही सीधापन आपके हक में घातक हो रहा है। बुरा न मानियेगा, आप लोग इस संसार में रहने के योग्य नहीं। आपको तो स्वर्ग में कोई स्थान पाना चाहिये था। खेतों का लगान बरसाती नाले की तरह बढ़ता जाता है, आप चूँ नहीं करते। अमले और अहलकार आपको नोचते रहते हैं, आप ज़बान नहीं हिलाते। इसका यह नतीजा हो रहा है कि आपको लोग दोनो हाथों से लूट रहे हैं; पर आपको खबर नहीं। आपके हाथों से सभी रोज़गार छिनते जाते हैं, आपका सर्वनाश हो रहा है; पर आप आँखें खोलकर नहीं देखते। पहले लाखों भाई सूत कातकर, कपड़े बुनकर गुजर करते थे। अब सब कपड़ा विदेश से आता है। पहले लाखों आदमी यहीं नमक बनाते थे। अब नमक बाहर से आता है। यहाँ नमक बनाना जुर्म है। आप के देश में इतना नमक है कि सारे संसार का दो सौ साल तक उससे काम चल सकता है; पर आप सात करोड़ रुपए सिर्फ नमक के लिए देते हैं। आप के ऊसरों में, झीलों में नमक भरा पड़ा है, आप उसे छू नहीं सकते। शायद कुछ दिन में आपके कूँओं पर भी महसूल लग जाय। क्या आप अब भी यह अन्याय सहते रहेंगे?

एक आवाज़ आई—हम किस लायक़ हैं?

नायक—यही तो आपका भ्रम है। आप ही की गर्दन पर इतना बड़ा राज्य थमा हुआ है। आप ही इन बड़ी-बड़ी फौजों, इन बड़े-अफसरों के मालिक हैं; मगर फिर भी आप भूखों मरते हैं, अन्याय सहते हैं। इसी लिए, कि आपको अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं। यह समझ लीजिए कि संसार में जो आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह सदैव स्वार्थी और अन्यायी आदमियों का शिकार बना रहेगा।

आज संसार का सबसे बड़ा आदमी अपने प्राणों की बाजी खेल रहा है। हजारों जवान अपनी जानें हथेली पर लिये आप के दुःखों का अन्त करने के लिए तैयार हैं। जो लोग आपको असहाय समझकर दोनो हाथों से आपको लूट रहे हैं, वह कब चाहेंगे कि उनका शिकार उनके मुँह से छीना जाय। वे आपके इन सिपाहियों के साथ जितनी सख्तियाँ कर सकते हैं, कर रहे हैं; मगर हम लोग सब कुछ सहने को तैयार हैं। अब आप सोचिये कि आप हमारी कुछ मदद करेंगे? मरदों की तरह निकलकर अपने को अन्याय से बचायेंगे या कायरों की तरह बैठे हुए तक़दीर को कोसते रहेंगे? ऐसा अवसर फिर शायद कभी न आये। अगर इस वक्त चूके, तो फिर हमेशा हाथ मलते रहियेगा। हम न्याय और सत्य के लिए लड़ रहे हैं; इसलिए न्याय और सत्य ही के हथियारों से हमें लड़ना है। हमें ऐसे वीरों की जरूरत है, जो हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल डालें और ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर धर्म के लिए सब कुछ झेल सकें। बोलिये, आप क्या मदद करते हैं?

कोई आगे नहीं बढ़ता। सन्नाटा छाया रहता है।

(४)

एकाएक शोर मचा—पुलीस! पुलीस आ गई!!

पुलीस का दारोगा कांसटेबलों के एक दल के साथ आकर सामने खड़ा हो गया। लोगों ने सहमी हुई आँखों और धड़कते हुए दिलों से उनकी ओर देखा और जैसे छिपने के लिए बिल खोजने लगे।

दारोगाजी ने हुक्म दिया—मारकर भगा दो इन बदमाशों को!

कांसटेबलों ने अपने डण्डे सँभाले; मगर इसके पहले कि वे किसी पर हाथ चलाये, सभी लोग हुर्र हो गये। कोई इधर से भागा, कोई

उधर से। भगदड़ मच गई। दस मिनट में वहाँ गाँव का एक आदमी भी न रहा। हाँ, नायक अपने स्थान पर अब भी खड़ा था और जत्था उसके पीछे बैठा हुआ था; केवल कोदई चौधरी नायक के समीप बैठे हुए स्थिर आँखों से भूमि की ओर ताक रहे थे।

दारोगा ने कोदई की ओर कठोर आखों से देखकर कहा—क्यों रे कोदइया, तू ने इन बदमाशों को क्यों ठहराया यहाँ ?

कोदई ने लाल-लाल आँखों से दारोगा की ओर देखा और ज़हर की तरह गुस्से को पी गया। आज अगर उनके सिर गृहस्थी का बखेड़ा न होता, लेना-देना न होता तो वह भी इसका मुँह-तोड़ जवाब देते। जिस गृहस्थी पर उन्होंने अपने जीवन के ५० साल होम कर दिये थे, वह इस समय एक विषैले सर्प की भाँति उनकी आत्मा में लिपटी हुई थी।

कोदई ने अभी कोई जवाब न दिया था कि नोहरी पीछे से आकर बोली—क्या लाल पगड़ी बाँधकर तुम्हारी जीभ भी ऐंठ गई है ? कोदई क्या तुम्हारे गुलाम हैं कि कोदइया-कोदइया कर रहे हो। हमारा ही पैसा खाते हो और हमीं को आँखें दिखाते हो ? तुम्हें लाज नहीं आती ?

नोहरी इस वक्त दोपहरी की धूप की तरह काँप रही थी। दारोगा एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गया। फिर कुछ सोचकर और औरत के मुँह लगना अपनी शान के खिलाफ़ समझकर कोदई से बोला—यह कौन शैतान की खाला है, कोदई ? खुदा का खौफ न होता, तो इसकी जबान तालू से खींच लेता।

बुढ़िया लाठी टेककर दारोगा की ओर घूरती हुई बोली—क्यों खुदा की दुहाई देकर खुदा को बदनाम करते हो ? तुम्हारे खुदा तो

तुम्हारे अफसर हैं, जिनकी तुम जूतियाँ चाटते हो। तुम्हें तो चाहिये था कि डूब मरते चिल्लू भर पानी में ! जानते हो, यह लोग जो यहाँ आये हैं, कौन हैं ? यह वह लोग हैं, जो हम ग़रीबों के लिए अपनी जान तक होमने को तैयार हैं। तुम उन्हें बदमाश कहते हो। तुम, जो घूस के रुपए खाते हो, जुआ खेलाते हो, चोरियाँ करवाते हो, डाके डलवाते हो, भले आदमियों को फँसाकर मुट्ठियाँ गर्म करते हो और अपने देवताओं की जूतियों पर नाक रगड़ते हो, तुम इन्हें बदमाश कहते हो !

नोहरी की तीक्ष्ण बातें सुनकर बहुत से लोग जो इधर-उधर दबक गये थे, फिर जमा हो गये। दारोग़ा ने देखा, भीड़ बढ़ती जाती है, तो अपना हंटर लेकर उन पर पिल पड़े। लोग फिर तितर-बितर हो गये। एक हंटर नोहरी पर भी पड़ा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई चिंगारी सारी पीठ पर दौड़ गई। उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया; पर अपनी बची हुई शक्ति को एकत्र करके ऊँचे स्वर में बोली—लड़को, क्यों भागते हो ? क्या यहाँ नेवता खाने आये थे, या कोई नाच-तमाशा हो रहा था ? तुम्हारे इसी लेंड़ीपन ने इन सबों को शेर बना रखा है। कब तक यह मार धाड़, गाली-गुफ़्ता सहते रहोगे ?

एक सिपाही ने बुढ़िया की गरदन पकड़कर ज़ोर से धक्का दिया। बुढ़िया दो-तीन क़दम पर औंधे मुँह गिरा चाहती थी कि कोदई ने लपककर उसे सँभाल लिया और बोला—क्या एक दुखिया पर गुस्सा दिखाते हो यारो ? क्या गुलामी ने तुम्हें नामर्द भी बना दिया है ? औरतों पर, बूढ़ों पर, निहत्थों पर वार करते हो, यह मरदों का काम नहीं है।

नोहरी ने ज़मीन पर पड़े-पड़े कहा—मर्द होते, तो गुलाम ही क्यों होते! भगवान! आदमी इतना निर्दयी भी हो सकता है? भला अँगरेज इस तरह बेदरदी करे, तो एक बात है। उसका राज्य है। तुम तो उसके चाकर हो, तुम्हें राज तो न मिलेगा; मगर राँड़ माँड़ में ही खुश! इन्हें कोई तलब देता जाय, दूसरों की गरदन भी काटने में इन्हें संकोच नहीं!

अब दारोग़ा ने नायक को डाँटना शुरू किया—तुम किसके हुक्म से इस गाँव में आये?

नायक ने शांत भाव से कहा—खुदा के हुक्म से।

दारोग़ा—तुम रियाया के अमन में ख़लल डालते हो?

नायक—अगर उन्हें उनकी हालत बताना उनके अमन में ख़लल डालना है, तो बेशक हम उनके अमन में ख़लल डाल रहे हैं!

भागनेवालों के कदम एक बार फिर रुक गये। कोदई ने उनकी ओर निराश आँखों से देखकर काँपते हुए स्वर में कहा—भाइयो, इस बखत कई गावों के आदमी यहाँ जमा हैं। दारोग़ा ने हमारी जैसी बेआबरूई की है, क्या उसे सहकर तुम आराम की नींद सो सकते हो? इसकी फरियाद कौन सुनेगा? हाकिम लोग क्या हमारी फरियाद सुनेंगे? कभी नहीं। आज अगर हम लोग मार डाले जायँ, तो भी कुछ न होगा। यह है हमारी इज़्जत और आबरू। थुड़ी है इस जिन्दगानी पर!

समूह स्थिर भाव से खड़ा हो गया, जैसे बहता हुआ पानी मेंड़ से रुक जाय। भय का धुआँ, जो लोगों के हृदय पर छा गया था, एकाएक हट गया। उनके चेहरे कठोर हो गये। दारोग़ा ने उनके तीवर देखे, तो तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया और कोदई को गिरफ़्तार

करने का हुक्म दिया। दो सिपाहियों ने बढ़कर कोदई की बाहें पकड़ लीं। कोदई ने कहा—घबड़ाते क्यों हो, मैं कहीं भागूँगा नहीं। चलो, कहाँ चलते हो ?

ज्योंही कोदई दोनो सिपाहियों के साथ चला, उसके दोनो जवान बेटे कई आदमियों के साथ सिपाहियों की ओर लपके कि कोदई को उनके हाथों से छीन लें। सभी आदमी विकट आवेश में आकर पुलीस-वालों के चारो ओर जमा हो गये।

दारोग़ा ने कहा—तुम लोग हट जाओ, वरना मैं फ़ायर कर दूँगा।

समूह ने इस धमकी का जवाब 'भारत माता की जय!' से दिया और एक-एक दो-दो क़दम और आगे खिसक आये।

दारोग़ा ने देखा, अब जान बचती नहीं नज़र आती। नम्रता से बोला—नायक साहब, यह लोग फ़साद पर आमादा हैं। इसका नतीजा अच्छा न होगा।

नायक ने कहा—नहीं, जब तक हममें से एक आदमी भी यहाँ रहेगा, आपके ऊपर कोई हाथ न उठा सकेगा। आपसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम और आप दोनो ही एक पैरों के तले दबे हुए हैं। यह हमारी बदनसीबी है, कि हम-आप दो विरोधी दलों में खड़े हैं।

यह कहते हुए नायक ने गाँववालों को समझाया—भाइयो, मैं आपसे कह चुका हूँ, यह न्याय और धर्म की लड़ाई है और हमें न्याय और धर्म के हथियारों से ही लड़ना है। हमें अपने भाइयों से नहीं लड़ना है। हमें तो किसीसे भी लड़ना नहीं है। दारोग़ा की जगह कोई अँगरेज होता, तो भी हम उसकी इतनी ही रक्षा करते। दारोग़ा ने कोदई चौधरी को गिरफ्तार किया है। मैं इसे चौधरी का सौभाग्य

समझता हूँ। धन्य हैं वे लोग, जो आज़ादी की लड़ाई में सज़ा पायें। यह बिगड़ने या घबड़ाने की बात नहीं है। आप लोग हट जायँ और पुलीस को जाने दें।

दारोग़ा और सिपाही कोदई को लेकर चले। लोगों ने जयध्वनि की—'भारत माता की जय!'

कोदई ने जवाब दिया—राम-राम, भाइयो, राम-राम। डटे रहना मैदान में। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। भगवान सबका मालिक है।

दोनो लड़के आँखों में आसू भरे आये और कातर स्वर में बोले—हमें क्या कहे जाते हो दादा?

कोदई ने उन्हें बढ़ावा देते हुए कहा—भगवान् का भरोसा मत छोड़ना और वह करना, जो मरदों को करना चाहिये। भय सारी बुराइयों की जड़ है। इसे मन से निकाल डालो, फिर तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता। सत्य की कभी हार नहीं होती।

आज पुलीस के सिपाहियों के बीच में कोदई को निर्भयता का जैसा अनुभव हो रहा था, वैसा पहले कभी न हुआ था। जेल और फाँसी उसके लिए आज भय की वस्तु नहीं, गौरव की वस्तु हो गई थी। सत्य का प्रत्यक्ष रूप आज उसने पहली बार देखा। मानो वह कवच की भाँति उसकी रक्षा कर रहा हो।

(५)

गाँववालों के लिए कोदई का पकड़ लिया जाना लज्जाजनक मालूम हो रहा था। उनकी आँखों के सामने उनके चौधरी इस तरह पकड़ लिये गये और वे कुछ न कर सके। अब वे मुँह कैसे दिखायें! हरएक मुख पर गहरी वेदना झलक रही थी जैसे गाँव लुट गया हो।

सहसा नोहरी ने चिल्लाकर कहा—अब सब जने खड़े क्या पछता रहे हो ! देख ली अपनी दुर्दशा, या अभी कुछ बाकी है ! आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं, लाठी से राज हो रहा है और हम इतने बेशरम हैं कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते। हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते, तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते ? जब तक तुम गुलाम बने रहोगे, उनकी सेवा-टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा-चोकर मिलता रहेगा ; लेकिन जिस दिन तुमने कंधा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह मार खाते रहोगे ? कब तक मुर्दों की तरह पड़े गिद्धों से अपने को नोचवाते रहोगे ? अब दिखा दो, कि तुम भी जीते-जागते हो और तुम्हें भी अपनी इज़्ज़त-आबरू का कुछ खयाल है। जब इज़्ज़त ही न रही, तो क्या करोगे खेती-बारी करके, धन कमाकर ? जीकर ही क्या करोगे ! क्या इसी लिए जी रहे हो, कि तुम्हारे बाल-बच्चे इसी तरह लातें खाते जायँ, इस तरह कुचले जायँ ? छोड़ो यह कायरता ! आखिर एक दिन खाट पर पड़े-पड़े मर जाओगे, क्यों नहीं इस धरम की लड़ाई में आकर वीरों की तरह मरते ! मैं तो बूढ़ी औरत हूँ; लेकिन और कुछ न कर सकूँगी, तो जहाँ यह लोग सोयेंगे, वहाँ झाड़ू तो लगा दूँगी, इन्हें पंखा तो झलूँगी !

कोदई का बड़ा लड़का मैकू बोला—हमारे जीते-जी तुम जाओगी काकी, हमारे जीवन को धिक्कार है ! अभी तो हम तुम्हारे बालक जीते ही हैं ! मैं चलता हूँ उधर। खेती-बारी गंगा देखेगा।

गंगा उसका छोटा भाई था। बोला—भैया, तुम यह अन्याय करते हो। मेरे रहते तुम नहीं जा सकते। तुम रहोगे, तो गिरहस्थी को सँभालोगे। मुझसे तो कुछ न होगा। मुझे जाने दो।

मैकू—इसे काकी पर छोड़ दो। इस तरह हमारी-तुम्हारी लड़ाई होगी। जिसे काकी का हुक्म हो, वह जाय।

नोहरी ने गर्व से मुसकिराकर कहा—जो मुझे घूस देगा, उसी को जिताऊँगी।

मैकू—क्या तुम्हारी कचहरी में भी वही घूस चलेगा काकी ? हमने तो समझा था, यहाँ ईमान का फैसला होगा।

नोहरी—चलो रहने दो। मरती दाईं राज मिला है, तो कुछ तो कमा लूँ।

गंगा हँसता हुआ बोला—मैं तुम्हें घूस दूँगा काकी। अबकी बाजार जाऊँगा, तो तुम्हारे लिए पूर्वी तमाखू का पत्ता लाऊँगा।

नोहरी—तो बस, तेरी ही जीत है। तू ही जाना।

मैकू—काकी, तुम न्याय नहीं कर रही हो।

नोहरी—अदालत का फैसला कभी दोनो फरीक ने पसन्द किया है कि तुम्हीं करोगे ?

गंगा ने नोहरी के चरण छूये, फिर भाई से गले मिला और बोला—कल दादा को कहला भेजना कि मैं जाता हूँ।

एक आदमी ने कहा—मेरा भी नाम लिख लो भाई—सेवाराम।

सबने जय-घोष किया। सेवाराम आकर नायक के पास खड़ा हो गया।

दूसरी आवाज़ आई—मेरा नाम लिख लो—भजनसिंह।

सबने जय-घोष किया। भजनसिंह जाकर नायक के पास खड़ा हो गया। भजनसिंह दस पाँच-गाँवों में पहलवानी के लिए मशहूर था। वह अपनी चौड़ी छाती ताने, सिर उठाये नायक के पास खड़ा हुआ, तो जैसे मण्डप के नीचे एक नये जीवन का उदय हो गया।

तुरन्त ही तीसरी आवाज़ आई—मेरा नाम लिखो—घूरे ।

यह गाँव का चौकीदार था । लोगों ने सिर उठा-उठाकर उसे देखा । सहसा किसी को विश्वास न आता था कि घूरे अपना नाम लिखायेगा ।

भजनसिंह ने हँसते हुए पूछा—तुम्हें क्या हुआ है घूरे ?

घूरे ने कहा—मुझे भी वही हुआ है, जो तुम्हें हुआ है । बीस साल तक गुलामी करते-करते थक गया ।

फिर आवाज़ आई—मेरा नाम लिखो—काले खाँ ।

यह ज़मींदार का शहना था, बड़ा ही जाबिर और दबंग । फिर लोगों को आश्चर्य हुआ ।

मैकू बोला—मालूम होता है हमें लूट-लूटकर घर भर लिया है, क्यों ?

काले खाँ गम्भीर स्वर में बोला—क्या, जो आदमी भटकता रहे, उसे कभी सीधी रास्ते पर न आने दोगे भाई । अब तक जिसका नमक खाता था, उसका हुक्म बजाता था । तुमको लूट-लूटकर उसका घर भरता था । अब मालूम हुआ, कि मैं बड़े भारी मुगालते में पड़ा हुआ था । तुम सब भाइयों को मैंने बहुत सताया है । अब मुझे माफ़ी दो ।

पाँचो रंगरूट एक दूसरे से लिपटते थे, उछलते थे, चीखते थे, मानो उन्होंने सचमुच स्वराज्य पा लिया हो, और वास्तव में उन्हें स्वराज्य मिल गया था । स्वराज्य चित्त की वृत्तिमात्र है । ज्योंही पराधीनता का आतङ्क दिल से निकल गया, आपको स्वराज्य मिल गया । भय ही पराधीनता है, निर्भयता ही स्वराज्य है । व्यवस्था और संगठन तो गौरव है ।

नायक ने उन सेवकों को संबोधित करके कहा—मित्रो, आप आज आज़ादी के सिपाहियों में आ मिले, इस पर मैं आपको बधाई देता हूँ। आपको मालूम है, हम किस तरह की लड़ाई करने जा रहे हैं। आप के ऊपर तरह-तरह की सख़्तियाँ की जाँयगी; मगर याद रखिये, जिस तरह आज आपने मोह और लोभ का त्याग कर दिया है, उसी तरह हिंसा और क्रोध का भी त्याग कर दीजिये। हम धर्म-संग्राम में जा रहे हैं। हमें धर्म के रास्ते पर जमे रहना होगा। आप इसके लिए तैयार हैं?

पाँचो ने एक स्वर से कहा—तैयार हैं!

नायक ने आशीर्वाद दिया—ईश्वर आपकी मदद करे।

(६)

उस सुहाने, सुनहले, प्रभात में जैसे उमंग घुली हुई थी। समीर के हलके-हलके झोंकों में, प्रकाश की हलकी-हलकी किरणों में उमंग सनी हुई थी। लोग जैसे दीवाने हो गये थे। मानो आज़ादी की देवी उन्हें अपनी ओर बुला रही हो। वही खेत-खलिहान हैं, वही बाग़-बगीचे हैं, वही स्त्री-पुरुष हैं; पर आज के प्रभात में जो आशीर्वाद है, जो वरदान है, जो विभूति है, वह और कभी न थी। वही खेत-खलिहान, बाग-बग़ीचे, स्त्री-पुरुष आज एक नई विभूति में रंग गये हैं।

सूर्य निकलने के पहले ही कई हज़ार आदमियों का जमाव हो गया था। जब सत्याग्रहियों का दल निकला, तो लोगों की मस्ताना आवाजों से आकाश गूँज उठा। नये सैनिकों की विदाई, उनकी रमणियों का कातर धैर्य, माता-पिता का आर्द्र गर्व, सैनिकों के परित्याग का दृश्य लोगों को मस्त किये देता था।

सहसा नोहरी लाठी टेकती हुई आकर खड़ी हो गई।

मैकू ने कहा—काकी, हमें आशीर्वाद दो।

नोहरी—मैं तो तुम्हारे साथ ही चलती हूँ बेटा, कितना आशीर्वाद लोगे ?

कई आदमियों ने एक स्वर से कहा—काकी, तुम चली जाओगी, तो यहाँ कौन रहेगा ?

नोहरी ने शुभ कामना से भरे हुए स्वर में कहा—भैया, मेरे जाने के तो अब दिन ही हैं, आज न जाऊँगी, दो-चार महीने बाद जाऊँगी ! अभी जाऊँगी, तो जीवन सुफल हो जायगा। दो-चार महीने में खाट पर पड़े-पड़े जाऊँगी, तो मन की आस मन में ही रह जायगी। इतने बालक हैं, इनकी सेवा से मेरी मुकुत बन जायगी। भगवान करे, तुम लोगों के सुदिन आयें और मैं अपनी जिन्दगी में तुम्हारा सुख देख लूँ।

यह कहते हुए नोहरी ने सबको आशीर्वाद दिया और नायक के पास जाकर खड़ी हो गई।

लोग खड़े देख रहे थे और जत्था गाता हुआ चला जाता था।

'एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फ़र्द थे,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।'

नोहरी के पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे, मानो विमान पर बैठी हुई स्वर्ग जा रही हो।